हरिऔध

भारतीय साहित्य के निर्माता

हरिऔध

लेखक

मुकुन्ददेव शर्मा

The rates of the Sahitya Akademi publications have been increased w.e.f. 1 May 1992 vide Govt. of India letter No. JS(K)/91-545 dated 11 February 1992.

साहित्य अकादेमी

Hariaudh : A monograph by Mukund Dev Sharma on the Hindi poet. Sahitya Akademi, New Delhi (1984).

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00

प्रथम संस्करण : 1984

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110001

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700029

29, एल्डाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास 600018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00

मुद्रक
संजय प्रिंटर्स,
दिल्ली 110032

अनुक्रम

परिचय	7
व्यक्तित्व और वैयक्तिकता	11
प्रेरणा के स्रोत	19
प्रारम्भिक रचनाएँ	26
मुक्तक रचनाएँ	38
खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्यकार	47
हरिऔध के महाकाव्यों की विशेषता	58
उपसंहार	66
परिशिष्ट I हरिऔध की प्रमुख कृतियाँ	73
परिशिष्ट II अन्य संदर्भ-ग्रन्थ	74

परिचय

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का जन्म 15 अप्रैल, 1865 को आज़मगढ़ स्थित निज़ामाबाद नामक तहसील में हुआ। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। 'हरिऔध' के पूर्वज पंडित काशीनाथ उपाध्याय जहाँगीर के दरबार में ज़िलेदार थे और दिल्ली में ही उनका निवास था। उनके पड़ोस में ही एक कायस्थ परिवार रहता था, जिसके मुखिया सम्राट जहाँगीर के यहाँ मीर मुंशी थे। मीर मुंशी किसी कारण-वश सम्राट के कोप भाजन हुए। उनके वंश के कुछ लोगों को संरक्षण देने के कारण श्री काशीनाथ उपाध्याय भी कोप के शिकार हुए। इसके पूर्व कि वे पकड़ में आते वह दिल्ली छोड़कर अमृतसर होते हुए बदायूँ आये। सिख गुरुओं का उन्हें संरक्षण मिला। कुछ दिन बदायूँ रहने के बाद उनका परिवार निज़ामाबाद आकर बस गया। उपाध्याय के वंश ने सिख धर्म कुछ शर्तों के साथ स्वीकार किया। अयोध्या सिंह के नाम के साथ जुड़ा 'सिंह' इसी बात का द्योतक है।

'हरिऔध' के पिता का नाम पंडित भोला सिंह उपाध्याय और माँ का नाम रुक्मणी देवी था। इनके ताऊ श्री ब्रह्मा सिंह उपाध्याय बड़े ही प्रसिद्ध ज्योतिषी और संस्कृत के जाने-माने विद्वान थे। उनकी जीविका का साधन पंडिताई था। 'हरिऔध' की प्रारम्भिक शिक्षा इन्हीं के देख-रेख में हुई। श्रीमद्भागवत के अनेक मार्मिक स्थलों के श्लोक उन्हें कंठस्थ थे। वह बालक 'हरिऔध' को गोद में बिठाकर उन श्लोकों का पाठ किया करते थे। पाँच वर्ष की अवस्था होने पर उनका विद्यारंभ संस्कार हुआ। सात वर्ष की अवस्था तक घर पर ही संस्कृत और हिन्दी भाषा की शिक्षा उन्हें मिलती रही।

'हरिऔध' की माता का जीवन भी करुणामय था। वे कृष्ण लीलाओं का पाठ करतीं और निरन्तर उनकी आँखें जल से पूर्ण रहतीं। माता की करुणामय वृत्ति का भी प्रभाव 'हरिऔध' पर पड़ा था। 'हरिऔध' ने जहाँ बालसुलभ हृदय पाया था, वहीं उनका जीवन भी करुणा से ओतप्रोत था। सात वर्ष की अवस्था होने पर निज़ामाबाद के तहसीली स्कूल में इनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। वहीं से 1879 में उन्होंने मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और सन् 1884 में उसी

विद्यालय में अध्यापक हो गये। सन् 1887 में उन्होंने नार्मल परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तत्कालीन विद्यालय निरीक्षक की सहायता से सन् 1889 में उन्हें कानूनगोई की परीक्षा में बैठने का अवसर मिला। परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर वह अनेक वर्षों तक कानूनगो, गिरदावर कानूनगो और सदर कानूनगो के सरकारी पदों पर कार्य करते रहे। इसी पद पर कार्य करते हुए सन् 1923 में उन्होंने सरकारी नौकरी से अवकाश प्राप्त किया।

सरकारी नौकरी से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद महामना मदन मोहन मालवीय के आग्रह पर उन्होंने मार्च, 1924 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर कार्य करना प्रारम्भ किया। हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अवैतनिक प्राध्यापक के रूप में वे सन् 1941 तक कार्य करते रहे। महामना मालवीय की इन पर असीम कृपा थी। वे इनका बड़ा आदर और सम्मान किया करते थे। विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उन दिनों आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. श्यामसुन्दर दास और लाला भगवानदीन भी काम करते थे। 'हरिऔध' जी को इन लोगों के सम्पर्क में आने का अच्छा सुअवसर मिला।

'हरिऔध' का विवाह सन् 1882 में हुआ। इनकी धर्मपत्नी का नाम अनंत-कुमारी था। हरिऔध जी का पारिवारिक जीवन बड़ा ही सुखमय था। जीवन का अधिकांश समय आज़मगढ़ में ही बीतता था। वहाँ वह अपनी छोटी भगिनी आनंदी देवी के यहाँ रहते थे। शनिवार के दिन निज़ामाबाद आया जाया करते थे। इनका परिवार निज़ामाबाद में ही रहता था। श्रीमती अनंत कुमारी का देहावसान सन् 1905 में हुआ। यों तो उनकी कई संतानें हुईं लेकिन दो संतानें ही जीवित रहीं। 'हरिऔध' के पुत्र का नाम पंडित सूर्यनारायण उपध्याय और पुत्री का विंध्य-वासिनी देवी था।

'हरिऔध' के साहित्यिक जीवन के निर्माण में **बाबा सुमेरसिंह साहबजादे** का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। बाबा सुमेरसिंह पटना के गुरुद्वारे हरिजी के महंत थे लेकिन उनका जन्म स्थान निज़ामाबाद था। जीवन का अधिकांश समय इन्होंने निज़ामाबाद में ही बिताया। 'हरिऔध' जी जब इनके सम्पर्क में आये तब उन्होंने इनकी बड़ी सहायता की। निज़ामाबाद प्रवास के दिनों में बराबर काव्य गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। हरिऔध भी उनमें बराबर सम्मिलित हुआ करते थे। बाबा सुमेरसिंह की ओर से इन्हें बड़ा प्रोत्साहन मिलता था। बाबा सुमेरसिंह काशी स्थित रेशम कटरा की संगत में आकर ठहरा करते थे। बाबा जी ब्रज भाषा के कवि थे और ब्रज भाषा में बड़ी रुचि रखते थे। सुमेरसिंह **'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'** के घनिष्ठ मित्रों में थे। एक अवसर पर जब 'भारतेन्दु' सुमेरसिंह जी से संगत में मिलने आये तो उन्होंने 'हरिऔध' को उनसे मिलाया। उस समय 'हरिऔध' की उम्र लगभग 18 वर्ष की थी।

'हरिऔध' धार्मिक वृत्ति के चरित्रवान व्यक्ति थे। अत्यन्त सरल स्वभाव के सहनशील और उदार व्यक्ति थे। अपने सरकारी नौकरी के कार्य काल में कर्तव्य-परायणता, निष्ठा और न्यायप्रियता के लिए विख्यात थे। इनके उच्च अधिकारी इनका बड़ा सम्मान करते थे और इनकी बातों को महत्त्व देते थे। हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, उर्दू, अंग्रेज़ी, फ़ारसी, गुरुमुखी, मराठी और बंगला भाषाओं का बहुत अच्छा ज्ञान इन्होंने स्वाध्याय से प्राप्त किया। इन भाषाओं के कुछ ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद भी इन्होंने किया था। प्रारम्भ में ये ब्रज भाषा में ही रचना करते रहे। कबीर की साखियों पर इन्होंने अनेक कुंडलियाँ लिखी थीं, जो 1879 में **'कबीर कुंडल'** के नाम से प्रकाशित हुई। यह इनकी पहली रचना थी। अयोध्या-सिंह का 'हरिऔध' उपनाम ब्रज भाषा काव्य काल का ही है। यह उपनाम सिंह का हरि और अयोध्या का 'औध' करके बनाया गया है। 'हरिऔध' ब्रज भाषा के भी एक सफल कवि रहे हैं और इनकी ब्रज भाषा की रचनाओं का चमत्कार **'रसकलस'** में देखा जा सकता है। सन् 1907 से वह खड़ी बोली की ओर आकर्षित हुए और सन् 1907 से 1947 तक अबाध गति से खड़ी बोली की रचनाओं में लगे रहे।

'हरिऔध' का यशस्वी क्रियाशील जीवन सन् 1941 के जुलाई मास में समाप्त हुआ। इसी वर्ष उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय के कार्यभार से अवकाश ग्रहण किया। अवकाश ग्रहण करने के बाद वे अपने नगर आजमगढ़ वापस आ गये। 16 जून, 1884 से लेकर 30 जून 1941 अर्थात् लगभग 57 वर्ष तक उनका जीवन बड़ा ही व्यस्त और गतिशील रहा। अवकाश ग्रहण करने के बाद उनके जीवन में एक विचित्र प्रकार की रिक्तता उत्पन्न हो गयी। उनके लिए समय काटना कठिन हो गया।

एक जुलाई 1941 से 6 मार्च, 1947 तक का समय उनके जीवन का सबसे दुखद और कष्टकर काल था। जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्हें घोर असाहित्यिक वातावरण में रहना पड़ा। शरीर शिथिल हो चला था। इंद्रियाँ, जो संयम के बल पर अनुशासित एवं व्यवस्थित रूप से कार्य करती रहीं, उनमें भी धीरे-धीरे असंयम का प्रवेश हो रहा था। इस काल में भी 'हरिऔध' ने साहित्य की साधना से मुँह नहीं मोड़ा। नित्य प्रति प्रातःकाल वह पाँच दोहे लिखकर संतोष कर लेते थे। उनका यह जीवन क्रम उनके अन्तिम दिन तक चलता रहा। वृद्धावस्था के कारण स्वास्थ्य में भी बड़ा परिवर्तन हो गया था। आर्थिक कठिनाइयों के कारण उनमें निरन्तर घबराहट बनी रहती थी। आज़मगढ़ पहुँचने पर दो वर्षों के बाद उन्हें विस्मृति होने लगी। इस नयी कठिनाई के कारण उन्हें कुछ शान्ति भी मिली और वह अपने को अनेक चिन्ताओं से मुक्त रख सके। लेकिन इस विस्मृति का प्रभाव मात्र उनकी चर्या पर ही पड़ा था। लिखने-पढ़ने अथवा पत्राचार आदि के कार्य

में किसी प्रकार का अंतर न था। पहले की-सी सतर्कता बनी रही। लिखने-पढ़ने में किसी प्रकार की असावधानी नहीं दीख पड़ती थी। इस अवसर पर उनकी एकाग्रता देखते ही बनती थी। लेकिन जैसे ही वह लिखना-पढ़ना समाप्त कर लेते थे, शिथिलता और विस्मृति का प्रभाव होने लगता था।

1 मार्च, 1947 को वे अपने भाँजे श्री विश्वनाथ तिवारी के यहाँ से अपने पुत्र के निवास आ रहे थे। मार्ग में ही पैर लड़खड़ा गया और वे गिर पड़े। बाद में उठकर किसी प्रकार अपने पुत्र के यहाँ आ गये। थोड़ी चोट उन्हें लग गयी थी। दुर्बलता बहुत ही अधिक हो रही थी लेकिन वे किसी का सहारा नहीं लेते थे और न लेना चाहते थे। वे अपने जीवन को स्वतः खींचना चाहते थे। कुछ दिन इसी प्रकार बीते। 16 मार्च, 1947 को प्रातःकाल उन पर पक्षाघात का प्रभाव हुआ और वह कुछ समय के लिए अचेत हो गये। जीवनी शक्ति क्षीण हो रही थी। उठने के उन्होंने अनेक प्रयत्न किये परन्तु उठ न सके। मध्याह्न में उनके हृदय और नाड़ी की गति अत्यंत क्षीण हो गयी। लगभग पाँच बजे अपराह्न उनकी आँखें सदा के लिए मुंद गयीं। यद्यपि काशी आदि में उनका विश्वास न था। लेकिन परिवार के लोग उनके शव को काशी ले गये और ठीक बारह बजे रात्रि के समय जब होलिका दहन हो रहा था, तब उनकी चिता अग्नि से प्रज्ज्वलित हो उठी।

व्यक्तित्व और वैयक्तिकता

हरिऔध जी के व्यक्तित्व का विकास संतुलित रूप में हुआ था। वह सरलता, सौजन्य और निःस्पृहता की मूर्ति थे। जीवन के प्रारम्भिक काल से ही उन्हें दूसरों की भावना का आदर करने तथा यथाशक्ति दूसरों की सहायता करने की शिक्षा मिली थी। दूसरों को उनके किसी कार्य से पीड़ा न पहुँचे, इसका वह ध्यान रखते थे। इस संबंध में मुझे एक घटना का स्मरण है। 'हरिऔध' के पुत्र पंडित सूर्य-नारायण उपाध्याय फतेहपुर में कार्य करते थे। उनका परिवार वहीं रहता था। कुछ दिनों पश्चात् वे भी आजमगढ़ चले आये और वहीं रहने लगे। हरि-औध अपनी बहन के यहाँ रहा करते थे। उनके पुत्र आजमगढ़ आ गये थे, इसलिए पुत्र के साथ रहना स्वाभाविक ही था। परन्तु उन्होंने अपनी बहन की भावनाओं को आहत नहीं होने दिया। वह दिन का भोजन बहन के यहाँ और रात का भोजन पुत्र के यहाँ करते रहे। दिन भर बहन के यहाँ रहते और सन्ध्या समय पुत्र के यहाँ चले जाते थे। बहन के यहाँ जब तक रहे, तब तक अपने भोजन का व्यय देते रहे और जब आजमगढ़ छोड़कर काशी चले गये तब अपनी बहन के पास आजीवन दस रुपये भेजते रहे। इस प्रकार वे अपने सम्बन्धों में बड़े सतर्क रहते थे। उनकी इच्छा यह रहती थी कि वह स्वार्थी न समझे जाएँ। विशेषकर अपने समीप के सम्बन्धियों के प्रति इस बात का बड़ा ध्यान रखते थे।

उनमें दूसरों के प्रति बड़ी शिष्टता थी। छोटे-बड़े सबको वह समान दृष्टि से देखते थे और सबका समान रूप से आदर करते थे। उनमें इतनी शिष्टता थी कि वे किसी की अनुचित बात अथवा उसके अनुचित कार्य का कठोरतापूर्वक प्रतिवाद नहीं कर सकते थे। उनकी शिष्टता के सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार लौटूसिंह जी गौतम लिखते हैं :

"पुराने हिन्दू कॉलिज एवं काशी विश्वविद्यालय का प्राचीन छात्र होने के नाते मुझे भारत के नेताओं तथा संसार के और भी प्रसिद्ध पुरुषों के उपदेश सुनने का सुख मिल चुका है। इस संसार की मायामयी काली कोठरी में लीक लगते देर नहीं। अपने स्थान का मद चाहे वह विद्या मद ही क्यों न हो, अधिकांश लोगों को

उन्मत्त कर देता है। वड़े-बड़े विद्वानों को देखा; वे भी अहंमन्यता के शिकार हैं। मानवीय निर्बलताएँ उन्हें पद-पद पर गिराती हैं किन्तु 'हरिऔध' इन सबके लिए अपवाद हैं। आपकी बात नितान्त निराली है। इस तपोनिष्ठ कवि सम्राट् के पास छोटे के लिए समय और स्थान सुरक्षित हैं। कड़ी-से-कड़ी बात को मीठे-से-मीठे और उत्तेजनाशून्य शब्दों द्वारा कह देना हरिऔध की वाणी की विशेष महत्ता है।"

हरिऔध की वाणी में अद्भुत मिठास थी। उनकी भाषण-शैली इतनी मधुर थी कि विरोधी भी वशवर्ती हो जाया करता था। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि वह कभी किसी प्रकार के विवाद में नहीं पड़ना चाहते थे। उन्हें जो कोई भी भला बुरा कहता था, उसे वे शान्तचित्त होकर सुन लेते थे परन्तु उत्तर प्रत्युत्तर में अपनी शक्ति का ह्रास नहीं करते थे। यह तो व्यवहार पक्ष की बात थी। परन्तु उन्हें आत्म-सम्मान का बराबर ध्यान रहता था। वह किसी की चाटुकारिता नहीं कर सकते थे। तत्काकीन कई राजे-महाराजों ने उन्हें अपने यहाँ बुलाया परन्तु जहाँ भी वह गये, उन्होंने आत्म-सम्मान को ठेस नहीं पहुँचने दी।

उनका चरित्र बड़ा उज्ज्वल था। वह किसी प्रकार के व्यसन में लिप्त रहनेवाले प्राणी नहीं थे। उनके व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए भारत के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल ने लिखा है—"मैं छोटा था, छोटे मुँह बड़ी बातें करता था, उन्हें खिजाता था, खड़ी बोली के पद्यों की पैरोडी करता था, पर इन सब बातों के साथ मेरे युवक हृदय में पंडितजी की पवित्र आत्मा का विना जाने असर हो रहा था, जिसे उम्र बढ़ने पर मैंने समझा और यह समझा कि इस कोटि के सिख महात्मा, गुरु और साधु और भी रहे होंगे, जिनके सुपंथ का मुख आज भी अयोध्यासिंह जी उज्ज्वल बनाये हुए हैं।

'हरिऔध' साधारण आय के व्यक्ति थे। वेतन के अतिरिक्त जमींदारी से उन्हें थोड़ी-बहुत आय हो जाया करती थी। परन्तु उनके व्यय की कोई सीमा न थी। विशेषकर साहित्यिक कार्यों के लिए तो वह बड़े उत्साह के साथ व्यय करते थे। कभी-कभी इसके कारण उन्हें आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था परन्तु वे कभी चिंतित नहीं हुए। उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उनके जीवन का अधिकांश समय अत्यन्त असाहित्यिक वातावरण में व्यतीत हुआ। वह ऐसे पद पर थे, जहाँ से नीचे गिरने के अनेक अवसर मिलते हैं फिर भी, उन्होंने अपनी वृत्तियों को संयमित रखा और वह लोलुपता के पीछे नहीं दौड़े। वह बराबर कहा करते थे, "धन तो हाथ का मैल है, उसके लिए क्या चिन्ता करना।"

आतिथ्य-सत्कार में वे विशेष अभिरुचि रखते थे। वास्तव में वह अतिथि को देवता ही मानते थे। घर पर आये किसी भी अतिथि की सुख-सुविधा का वह इतना ध्यान रखते थे कि कभी-कभी उसे संकोच होने लगता था। वह स्वतः अतिथि

की परिचर्या करते और जब तक वह भोजन के आसान पर बैठा रहता तब तक वे स्वतः खड़े होकर यह देखते रहते कि थाल में किस वस्तु की कमी हो रही है। उनके व्यक्तित्व के प्रभाव के संबंध में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और कवि **जनार्दन झा 'द्विज'** लिखते हैं :

''इनका महान् व्यक्तित्व आडम्बरशून्य है। ये निष्कपट, निर्लोभ और निर-भिमानी तो हैं ही, साथ ही इनकी मिलनसारी भी बड़ी मधुर है। मिलने-जुलने से ये कभी उकताते नहीं, उनके साथ भूलकर भी अप्रिय बर्ताव नहीं करते। अतिथि को सचमुच अपने घर का देवता मानते हैं। छोटा-बड़ा, जो इनके पास पहुँच जाय, उसे ये समभाव से अपना लेते हैं। जो इनसे पहली ही बार मिलता है, वह यही अनुभव करता है कि प्रेम इनकी प्राण शक्ति है। ऐसा कौन है जो इनके गम्भीर मुख-मंडल तथा उन्नत ललाट को देखते ही यह न मान ले कि ये सत्यं-शिवं-सुंदरम् की सृष्टि करनेवाली प्रतिभा के प्राणवल्लभ हैं।''

काव्य-प्रणयन के समय उन्हें समाधिस्थ होते देखा गया था। जिस समय वह तन्मय होकर काव्य-रचना करते थे, अपने आस-पास के वातावरण और व्यक्तियों को बिलकुल भूल जाते थे और अनेक बार स्मरण दिलाने पर भी उनका ध्यान न बँटता था। एक बार जाड़े की रात्रि में वे शाल ओढ़े कुर्सी पर बैठे चिन्तन कर रहे थे। पास में आग की अँगीठी रखी थी। जाड़े में वह बराबर आग तापते थे। सोचते-सोचते वे इतने ध्यानमग्न हो गये कि उनके शाल का एक छोर अँगीठी में जा गिरा और जलने लगा। जब लपटें हाथ के समीप पहुँचीं तब उनका ध्यान टूटा और वे शाल को एक किनारे फेंककर खड़े हो गये। इस प्रकार की उत्कट तन्मयता के अनेक अवसर स्वतः इस लेखक ने देखे हैं। 'हरिऔध' का जीवन पूर्णतः काव्यमय था और उनके जीवन का अधिकांश समय काव्य-रचना अथवा उसके चिन्तन में ही व्यतीत होता था।

'हरिऔध' को काव्य के उपरान्त संगीत में ही लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता था। किसी सुमधुर कंठ की काकली उन्हें बरबस अपनी ओर खींच लेती थी। वह युवावस्था में बड़ी अच्छी ढोलक बजाते थे। उन्हें स्वर और ताल का पूर्ण ज्ञान था। चाहे राग-रागिनी पर आश्रित गायन हो, चाहे भोजपुरी का आल्हा अथवा बिरहा ही क्यों न हो, सस्वर सुनने के लिए वे आतुर रहते थे। यहाँ तक कि वेश्या का गाना सुनने में भी उन्हें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती थी परन्तु वह भी उस समय जब कि कहीं उपयुक्त स्थान पर गायन का आयोजन किया गया हो।

नगर की आपाधापी से दूर रहना ही उन्हें रुचिकर था। वह शहर में कभी रहना नहीं चाहते थे। यदि विवश होकर रहना ही पड़ता था तो नगर से बहुत दूर किसी बाग़ अथवा वाटिका में ही उनका निवास-स्थान होता था। लता-गुल्मों और पुष्पों से आच्छादित स्थलों पर बैठकर नीरव वातावरण में कार्य करना उन्हें अधिक

प्रिय था। परन्तु कोलाहल के कारण भी उन्हें किसी प्रकार की बाधा नहीं होती थी। वे बड़ी शीघ्रता से एकाग्रचित्त हो जाते थे और अपने विचारणीय विषय में रमने लगते थे।

भारत के वर्तमान प्रथम राष्ट्रपति **डॉक्टर राजेंद्रप्रसाद जी** भी उनके साहित्यिक कार्यों और जीवन से अत्यधिक प्रभावित रहे। आरा नागरी-प्रचारिणी-सभा के अभिनन्दनोत्सव के समय उन्होंने कहा था :—

"पूज्य कविवर जी जिनकी सेवा के लिए, आदर-प्रदर्शन के लिए हम आये हैं, उनका जीवन ऐसे ही साहित्य के निर्माण में लगा है। आपने ऐसे साहित्य की रचना की है, जिससे देश को ऊपर उठने में बहुत कुछ सहायता मिली है और आपकी यह सेवा एक साल या दो साल की नहीं है, वह आजीवन सेवा है। किसी लालच से नहीं, किसी आकांक्षा से नहीं, बल्कि सेवा को ही अपनी सेवा का पुरस्कार समझकर आपने सेवा-व्रत का पालन किया है।"

हरिऔध का साहित्यिक और सामाजिक व्यक्तित्व इतना प्रभावकर था कि उसकी अमिट छाप छोटे-बड़े सब पर पड़ती थी। उनके साहित्यिक कार्यों की कटु आलोचना करनेवाला व्यक्ति भी उनके सौजन्य और उनके उदार व्यक्तित्व की प्रशंसा किये बिना नहीं रहता था। इसका कारण यह था कि वह व्यर्थ के विरोध में कभी विश्वास न रखते थे। वह बड़ी सच्चाई और ईमानदारी से अपना कार्य करते थे, अतः उन्हें इसकी कभी चिन्ता नहीं हुई कि उनकी किस प्रकार और किसलिए कोई आलोचना करता है। विरोधी भी उनके सम्मुख आते ही उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर नतमस्तक हो जाता था।

'हरिऔध' स्वभावतया बड़े सतर्क, भयग्रस्त और संदेहास्पद व्यक्ति थे। अपने सब कार्यों में वे आवश्यकता से अधिक जागरूक रहते थे। यदि उन्हें कहीं यात्रा करनी होती थी तो गाड़ी के छूटने के भय से वे समय से बीस-पच्चीस मिनट पहले ही स्टेशन पहुँच जाया करते थे। इसी प्रकार वे कचहरी और विश्वविद्यालय जाने में भी समय का बराबर ध्यान रखते थे। हिन्दू विश्वविद्यालय में उन्होंने लगभग अट्ठारह वर्ष तक अवैतनिक अध्यापक के रूप में कार्य किया परन्तु मूसलधार वृष्टि होने पर भी वे ठीक समय से कालेज पहुँच जाते थे। वह कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहते थे, जिससे उनके अधिकारियों को शिकायत का अवसर मिले।

वस्त्रादि में भी उनकी सतर्कता देखते ही बनती थी। वह बहुत मूल्यवान वस्त्र तो नहीं पहनते थे परन्तु यह अवश्य था कि उनके वस्त्र बराबर बड़े ही साफ़-सुथरे रहते थे और उनमें कहीं भी किसी प्रकार की सिकुड़न नहीं होती थी। स्वदेशी आन्दोलन के पश्चात् वे बराबर स्वदेशी वस्त्रों का उपयोग करते रहे लेकिन स्वभाव से कोमल होने के कारण वे मोटे वस्त्र नहीं पहन सकते थे। उनकी पगड़ी दर्शनीय थी। पहले वे अपनी पगड़ी के वस्त्र को अच्छी तरह सँवार लेते थे तब उसे बाँधना

प्रारंभ करते थे। पगड़ी बाँधने में उन्हें लगभग पन्द्रह मिनट का समय लगता था। मालवीय जी की पगड़ी के समान ही उनकी पगड़ी भी अपने समय में बड़ी प्रसिद्ध थी। उनकी पगड़ी दुग्ध-धवल तो होती ही थी, उसमें कभी किसी प्रकार की अस्त-व्यस्तता नहीं दीख पड़ती थी। उसका आकार-प्रकार सदा एक-सा रहता था। गर्मी के दिनों में वे धोती पर ही शेरवानी पहनते थे और बनारसी रेशमी वस्त्र अथवा किसी अच्छे श्वेत वस्त्र की अचकन धारण करते थे। इंग्लिश बूट के अतिरिक्त वे अन्य प्रकार के जूते का उपयोग नहीं करते थे। अपेक्षाकृत उन्हें काला रंग पसंद था।

वह बड़े ही व्यवस्थित प्रकृति के व्यक्ति थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के समय की अनेक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ उनके पुस्तकालय में वर्तमान थीं। परन्तु उन्हें जब कोई निकालकर देखता था, तब आश्चर्य में पड़ जाता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे अभी प्रेस से छपकर निकली चली आ रही हैं। पुस्तकों के प्रति उन्हें बड़ी ममता थी। एक बार परिवार का एक सदस्य उनसे 'सरस्वती' पत्रिका माँग कर पढ़ने के लिए ले गया। जब वह पत्रिका लौटाने के लिए आया तो आवरण पृष्ठ बड़ा गन्दा हो चुका था तथा पत्रिका के अनेक पृष्ठ मुड़ गये थे। पत्रिका की यह अवस्था देखते ही उनकी आँखों में आँसू आ गये और उनके मुख से निकला, "जब मेरे जीवनकाल में ही मेरी पुस्तकों की यह दशा हो रही है तब मृत्यु के पश्चात् तो इन्हें कोई देखने-सुननेवाला भी न रहेगा।" उन्होंने बड़ी सावधानी से पत्रिका के पृष्ठों को ठीक किया और रबर तथा भीगे कपड़े से आवरण पृष्ठ को स्वच्छ कर उसे अन्य पत्रिकाओं के साथ रख दिया।

प्रति वर्ष ग्रीष्मावकाश में आज़मगढ़ आने पर वह अपने पुस्तकालय की सब पुस्तकों का अवलोकन करते और उन्हें झाड़-पोंछकर ठीक से रखते थे। उनके कमरे में प्रत्येक वस्तु यथास्थान रखी मिलती थी। यदि कोई उनकी किसी वस्तु का स्पर्श करता या उनकी सामग्रियों को इधर-उधर करता तो उन्हें तत्काल इसका पता चल जाता था। उनकी लेखनी, उनका मसिपात्र, उनके कागजपत्रादि एक संदूक़ में बंद रहते थे। उपयोग के पश्चात् वे उस संदूक़ को उठाकर अलमारी में रख दिया करते थे। वे किसी को अपनी पठन-पाठन की सामग्री का स्पर्श नहीं करने देते थे।

'हरिऔध' के जीवन काल में बाह्य तथा आंतरिक दोनों प्रकार की भावी आशंकाओं के कारण भय की उत्पत्ति हुई थी। बाल्यावस्था में क्वीन्स कालेज में पढ़ते समय उनका जीवन बड़ा असंयमित हो गया था, जिसके संबंध में उन्होंने लिखा है :—

"सन् 1889 में जब मेरा सिन चौदह साल का था, मिडिल वर्नाक्यूलर मैंने पास कर लिया, मुझको तीन रुपये गवर्नमेंट से स्कालरशिप मिली और क्वीन्स

कालेज, बनारस में अंग्रेज़ी पढ़ने की आज्ञा हुई। मैं पन्द्रह वर्ष के सिन में बनारस गया और बोर्डिंग हाउस में ठहरा। मैं घर भर में एक लड़का था, बड़े लाड़-प्यार से पला था, कभी किसी तरह की कठिनाई का सामना नहीं पड़ा था, घर पर पका-पकाया भोजन मिलता, अच्छी से अच्छी खाने की वस्तु मेरे लिए इहतिहात से रक्खी रहती। मैं जिस तरह चाहता रहता, जब चाहता नहाता-खाता, तनिक सिर धमकता, तो घर भर आवभगत में लग जाता। पर बनारस में ये सब बातें कैसे नसीब होतीं, यहाँ मुझको रोटी भी अपने हाथ से बनानी पड़ती और वह भी मैं कठिनाई से एक बेल बना सकता। जो रसोई बनती, वह भी अच्छी नहीं बनती, इससे उसको खाकर जी प्रसन्न न होता। चित्त पहले से ही वश में न था, रुपये हाथ में थे, फिर बनारस सा नगर, एक से एक खाने की अच्छी वस्तुएँ बिकने को आतीं, हमने भी उन पर हाथ मारना प्रारंभ किया। इसका फल यह हुआ कि जो कभी मैं कच्ची रसोई बनाता, तो बड़ी लापरवाही से बनाता, जिससे प्राय: वह बुरी बनती—जिससे मैं कुछ खाता, कुछ छोड़ देता। इससे भूख बनी रहती और खोंमचे वाले की राह ताकता रहता। ज्यों वह पहुँचता, मैं भी उसके पास जा धमकता और जो भी जी में आता लेकर खाता। इसका परिणाम बड़ा बुरा हुआ, एक तो मेरी प्रकृति बादी, दूसरे बनारस का जलवायु बादी, तीसरे मेरा असंयम। चार-पाँच महीने में मुझे बादी बवासीर हो गयी। उन दिनों मुझको दिन-रात कब्ज़ रहता, तबीअत जब देखो खराब। पर बात कुछ समझ में न आती।"

यह तो बाह्य कारण हुए। उन्होंने खान-पान रहन-सहन में व्यतिक्रम किया इसका शरीर पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात उनके ईश्वर संबंधी विचारों में परिवर्तन होने से उत्पन्न हुई। वे सदा यह चाहते थे कि उनको कोई अनीश्वरवादी न समझ ले और इसके कारण उन्हें समाज में हीन न समझा जाय। तीसरी, बात थी आर्थिक सुरक्षा की भावना। अत: उन्हें अपने परिवार के भरण-पोषण का पूरा भार वहन करना पड़ता था, यही नहीं सगे संबंधियों को भी समय-समय पर सहायता देनी पड़ती थी, अत: उन्हें सदा यह भय बना रहता कि कहीं उनकी रोज़ी पर कोई आँच न आ जाय। इसके कारण वे सदा सशंक और भयभीत रहते थे। उन्हें अपने अहं की रक्षा का भी बराबर ध्यान रहता था। इसलिए स्वतंत्रतापूर्वक या सीमोल्लंघनपूर्वक किसी से अधिक वार्तालाप करने की उनकी रुचि कभी नहीं होती थी।

आन्तरिक कारण भी बाल्यावस्था के समय उत्पन्न हुआ। घर से दूर छात्रावास में असंयमित जीवन के कारण रुग्णता और उसी काल में निरन्तर शव ले जाने वालों की "राम नाम सत्य है" की ध्वनि ने उनके मन को बड़ा सशंक बना दिया। उसी काल से मृत्यु की काली छाया ने उनका पीछा किया। परन्तु इस आन्तरिक कारण से भय की उत्पत्ति ने उनका बड़ा उपकार भी किया। वे मृत्यु के आतंक से

प्रतिक्षण, प्रतिदिन, प्रतिमास और प्रतिवर्ष आतंकित रहते थे। उनमें एक विचित्र ग्रन्थि उत्पन्न हो गयी थी। जब से लेखक ने होश सँभाला उसे स्मरण है, कि उनसे जब भी किसी ने पूछा—"पंडित जी स्वास्थ्य तो ठीक है प्रसन्न तो हैं?" तो वे इन प्रश्नों का बड़ा ही निराशावादी और नपे-तुले शब्दों में उत्तर दिया करते थे—"स्वास्थ्य तो कभी ठीक नहीं रहता, देखिये कब तक चलते हैं। जीवन का क्या ठीक"···आदि।

इस प्रकार मृत्यु-भय ने उनके मानस को निरन्तर उद्वेलित बनाये रखा। यही कारण था कि वे बड़े ही कठोर संयमी व्यक्ति हो गये। उनकी दिनचर्या, उनका उठना-बैठना यंत्रवत् हो गया। मृत्यु के आतंक की अभिव्यक्ति उन्हीं के शब्दों में पढ़िए—

"···साधारणतया संसार के सब लोगों के लिए मौत एक डरावनी वस्तु है, इतनी बड़ी डरावनी कि जिससे बढ़कर कोई दूसरी डरावनी वस्तु हो नहीं सकती। क्या वे योगी-यती जो निराले में बैठकर योग-जुगत साधते हैं, और संसार की ओर फूटी आँख से भी देखना रवा नहीं रखते, क्या वे साधु-सन्त जो सब झंझटों से निर्लेप रहकर रामरस में सराबोर रहते हैं और भूलकर भी चाह की भूल-भुलैया में पड़ना नहीं चाहते, क्या वे पंडित-ज्ञानी जो हरिनाम का अमृत पीते हैं, और चारों ओर ज्ञान का दीया जलाते हैं, और क्या वे ज्योतिषी और गुणी, जो दूरवीक्षणों से आकाश का समाचार लाते हैं, और मृतक को जिलाने का भी दावा करते हैं, जिनको देखो, उन्हीं को मौत के लिए यत्न करते पाओगे। और इस विचार में डूबे मिलेंगे कि कैसे मौत के हाथ से छुटकारा मिले और कैसे उसके तेज दाँत विफल कर दिये जायें?"

'हरिऔध' के कहने का तात्पर्य यह है कि बड़े वीतराग भी मृत्यु के आतंक से ग्रस्त हैं और उससे छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील हैं। अतः यदि उन्होंने भी मृत्यु के आतंक को समझकर उससे छुटकारा पाने का निरन्तर प्रयत्न किया तो यह कोई गलत बात नहीं है। बात भी ठीक है। संसार में विरला ही मनुष्य होगा, जो मृत्यु के भय से आतंकित न हो। सब यह जानते हैं कि हमें मरना है, परन्तु सब मरने के समय मरना नहीं चाहते और भयभीत रहते हैं।

जहाँ तक सम्भव होता था, वह अपना सारा कार्य अपने ही हाथों करना चाहते थे। नौकरों की कमी न थी। परन्तु शरीर-शुद्धि के पश्चात् वे स्वतः अपनी धोती और तौलिये को धोकर सूखने के लिए डाल दिया करते थे। यहाँ तक कि अपने वस्त्रों के टूटे हुए बटन भी वे स्वतः लगा लेते थे। उनकी सन्दूक में एक डिबिया में सुई, डोरा और बटन आदि बराबर रखे रहते थे।

उनके जीवन का प्रथम चरण ही यद्यपि इस प्रकार प्रारम्भ हुआ कि उनमें संदेह करने की भावना उत्पन्न हो गयी थी तथापि वह बड़े ही मिलनसार और संवे-

दनशील व्यक्ति थे। सबसे प्रेम का व्यवहार करते थे। उनसे बातचीत कर कोई असन्तुष्ट नहीं हो सकता था। वह कभी न तो कठोर शब्दों का उपयोग करते थे और न कभी किसी को कड़ी बात कहते थे। लेकिन उन्हें शीघ्र किसी का विश्वास नहीं होता था। जब तक वे किसी व्यक्ति को अच्छी तरह परख नहीं लेते थे तब तक कोई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य नहीं सौंपते थे। बाहर वालों के साथ ही नहीं, घर के सदस्यों के साथ भी उनका यही व्यवहार रहा। वह सदा यही प्रयत्न करते थे कि किसी के बुरे न हों, सबके भले बने रहें। किसी को नकारात्मक उत्तर देना उनके लिए बड़ा कठिन होता था, विशेषकर साहित्यिक कार्यों के लिए तो वह नकारात्मक उत्तर देने में बड़े कष्ट का अनुभव करते थे। वृद्धावस्था में उनका शरीर बहुत जर्जर हो गया था। उस समय भी जब कोई किसी कवि-सम्मेलन का सभापतित्व करने के लिए उनसे कहता था तब वह चलने का वचन दे देते और अन्तिम क्षणों में स्वास्थ्य के कारण असमर्थता प्रकट कर देते थे और इस प्रकार के संकोच के कारण निमन्त्रणकर्ता को बड़ी असुविधा होती थी क्योंकि ऐसे अवसरों पर सभापति का मिलना कठिन हो जाता था।

प्रेरणा के स्रोत

किशोरावस्था में थोड़ी मनमानी करने की इच्छा होती है। व्यक्ति, माता-पिता की आज्ञाओं के बन्धन से मुक्त होकर, अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र होने को उत्सुक होता है। स्वाभाविक है कि इस काल में बड़ों की इच्छा से विरोध हो। परन्तु यदि वह विरोध रचनात्मक हो और विघटनकारी न हो तो निश्चय ही किशोरों को मनमानी करने का तथा संसार के संघर्ष का अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलना चाहिए। क्योंकि माता-पिता की आज्ञा का यदि जीवन भर प्रभाव रहा तो व्यक्ति केवल जड़-मुहरे के रूप में ही विकसित होगा। न तो उसकी वृत्तियों का स्वतंत्र विकास होगा और न वह एक स्वस्थ व्यक्ति हो सकेगा। स्वतः कार्य करने का उत्साह तो समाप्त ही हो जायगा। यह निश्चित था कि यदि 'हरिऔध' की माता तथा उनके पितृव्य की चलती तो वे किसी भी स्थिति में उन्हें काशी न जाने देते परन्तु उनकी किशोरावस्था के हठ ने तथा मनोवैज्ञानिक विकास के प्रभाव ने अपना स्वतंत्र निर्णय करने का साहस प्रदान किया। वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी आये और क्वीन्स कालेज में प्रविष्ट हो गये।

यहाँ भी उन्हें जीवन पर प्रभाव डालने वाली अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का अवलोकन और व्यक्तियों का साक्षात्कार करने का अवसर मिला। सबसे अधिक प्रभाव तो क्वीन्स कालेज के तत्कालीन आचार्य का पड़ा। उन दिनों क्वीन्स कालेज के आचार्य अंग्रेज विद्वान ही हुआ करते थे। तत्कालीन आचार्य को गुलाब के फूलों का बड़ा शौक था। क्वीन्स कालेज के उद्यान में सप्त वर्ण के गुलाबों के सुन्दर पौधे वर्तमान थे। कालेज के उद्यान की प्रसिद्धि प्रांत भर में थी। 'हरिऔध' अभी कुछ ही दिन पूर्व ग्राम के वातावरण को छोड़कर नगर के वातावरण में आये थे। परिवार से पृथक् रहने का यह प्रथम अवसर था। एक दिन बड़े उदास मन वे क्वीन्स कालेज के उद्यान में घूम रहे थे। गुलाब के बड़े-बड़े सुन्दर पुष्पों ने उनका मन मोह लिया। वे ठिठक कर एक पुष्प के पास खड़े हो गये। थोड़ी देर पुष्प को देखते रहे और उसके उपरान्त उन्होंने उस पुष्प को तोड़ लिया।

आचार्य महोदय ने अपने कक्ष की खिड़की से उन्हें फूल तोड़ते देख लिया।

वह धीरे से अपने कक्ष से बाहर आये और उनके समीप पीछे से पहुँचकर उन्होंने धीरे से उनके कंधे पर हाथ रखा। 'हरिऔध' जैसे निद्रा से जाग पड़े हों। अपने सम्मुख आचार्य महोदय को देखकर वह घबड़ा गये। आचार्य ने बड़े स्नेह से उनसे कहा—"बेटा ! तू ने इस पुष्प को क्यों तोड़ा ? क्या तेरे हाथ में इसकी शोभा डाल से भी अधिक है ?"

आचार्य के ये प्रश्न सुनते ही उनके पैरों के नीचे से धरती खिसकती हुई प्रतीत हुई। वे मूक भाव से खड़े थे। उन्हें बोलने का साहस न हो सका। आचार्य ने पुनः कहा, "भविष्य में अब कभी पुष्प मत तोड़ना। डाल में रहकर यह पुष्प अनेक प्रेमियों का मन मोहित करता। लेकिन तुम्हारे हाथ में तो इसका जीवन दो घड़ी का ही है और अन्त में तुम इसे नोचकर फेंक दोगे।" इतना कहकर आचार्य महोदय तो अपने कक्ष में चले गये लेकिन 'हरिऔध' के मानस में विचित्र द्वन्द्व प्रारंभ हुआ। यह हृदय को चुभनेवाली बात थी।

यदि आचार्य ने उन्हें डाँट-फटकार दिया होता तो संभवतः इस घटना का अधिक प्रभाव न पड़ता। परन्तु उनके स्नेह ने, उलाहने ने उनके हृदय को उद्वेलित कर दिया उनके जीवन में एक नया मोड़ उपस्थित हुआ। इस घटना ने ही उन्हें दूसरों को पीड़ा न पहुँचाने की शिक्षा दी। जीवन भर वे इस बात से बड़े सतर्क रहे कि उनके कार्य से किसी को किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचे। यदि अनजाने भी वह किसी का मन दुखी कर देते तो बाद में उससे अधिक पीड़ा उन्हें स्वतः होती थी।

हरिऔध ने अपने इस पुष्प तोड़ने का प्रायश्चित्त किया और एक लम्बी कविता लिखकर उस गुलाब के फूल के तोड़ने की घटना को अमर बना दिया। इस सुन्दर कविता द्वारा उन्होंने अपने अपराध का बड़े मार्मिक शब्दों में प्रायश्चित्त किया और यदि वे स्वतः फूल होते तो ऐसी अवस्था में उनकी क्या भावनाएँ होतीं इस भाव को व्यक्त किया। उस उलाहने के द्वारा वास्तव में फूल तोड़ने के बाद जो उन्हें पीड़ा पहुँची थी, उसी का वर्णन है। यही नहीं, उस घटना के पश्चात् उन्होंने जीवन में कभी फूल तोड़ने का साहस नहीं किया। फूल तोड़ने से उनके मन में किन कारुणिक भावों का उदय हुआ, उसका अवलोकन करना आवश्यक है क्योंकि इसके कारण उनकी मानसिक स्थिति में बड़ा परिवर्तन उत्पन्न हुआ :—

"देख फूला एक फूल गुलाब का—
तोड़ उसको एक लड़के ने लिया,
इस सितम को देख बोला फूल यों
यह अरे बेपीर तूने क्या किया ?"

इस कविता ने उनके मन और शरीर दोनों पर प्रभाव डाला। परिवार की सीमा के बाहर उन्हें कुछ देखने-सुनने का अवसर नहीं मिला था। उस अवस्था तक

न तो उन्होंने किसी शव का दर्शन किया था और न 'राम-नाम सत्य है' का वाक्य ही सुना था। क्वीन्स कालेज के समीप जिस स्थान पर वे रहते थे, उस स्थान से नित्यप्रति अनेक शव श्मशान-घाट की ओर जाया करते थे। उनके साथ एक उनका सहपाठी भी रहता था। वह बड़ा ही भीरु था। यदि वह साहसी होता तो सम्भव है कि स्थिति भिन्न होती। परन्तु वह तो 'राम-नाम सत्य है' वाक्य सुनकर इनसे भी अधिक विचलित हो उठता था। उनके लिए यह नया अनुभव था। शवों को देखने से उनके हृदय में मृत्यु का आतंक बैठ गया। ये दृश्य उनके लिए असह्य हो उठे। हृदय में जो द्वन्द्व चल रहा था, उससे उन्हें मानसिक और शारीरिक बड़ी क्षति पहुँच रही थी, परन्तु वह स्वतः शिक्षार्जन के लिए काशी आये थे। अतः अपने अभिभावकों को अपनी स्थिति का समाचार न भेज सके। इसमें भी सम्भवतः संकोच ही प्रधान कारण था। किसी प्रकार उनके पितृव्य को इनके शोचनीय स्वास्थ्य का समाचार प्राप्त हो गया। वे निज़ामाबाद से काशी आये और उन्हें घर ले गये। उनका स्वास्थ्य बहुत कुछ पर्याप्त रूप से खराब हो चुका था अतः उन्हें पुनः काशी आकर पढ़ने की किसी ने सम्मति न दी और अब उनके पढ़ने-लिखने की व्यवस्था घर पर ही की गयी।

'हरिऔध' गीता के "**यद् यद् विभूतिमत्सत्वम् श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोंऽशसंभवम्**" में अटूट श्रद्धा और विश्वास रखते थे। यों तो वह प्रतिभाशाली, समाजोद्धारक, धर्म प्राण और भारतीय संस्कृति के पोषक महापुरुषों को भगवान् का अथवा महत् विभूति का अंश स्वीकार करते थे। परन्तु विशेष रूप से कुछ ऐसे लोग थे, जिनके जीवन की महान घटनाओं और जिनके चरित्र की महती उदारता ने उन्हें प्रभावित किया था और जब इन लोगों का वे गुणगान करते थे तो उनका कण्ठ स्वर भक्ति से गद्गद् हो जाता था।

समाज-सुधार और धर्म की रक्षा के लिए अथक परिश्रम करनेवालों में वह भगवान् शंकराचार्य और स्वामी दयानन्द जी के विचारों से बराबर प्रेरणा प्राप्त करते रहे। इन दोनों को वे एक-दूसरे का प्रपूरक मानते थे। स्वामी शंकराचार्य की त्याग, तपस्या और महान् धार्मिक विजयों को वह भारतीय संस्कृति की अपूर्व देन मानते थे। शंकराचार्य की दिग्विजय की घटनाओं का वर्णन करते-करते वह स्वतः उत्साह और स्फूर्ति की मूर्ति हो जाते थे। साथ ही, वह यह भी चाहते थे कि हिन्दू धर्म के नेता, त्यागी महात्माओं का वैयक्तिक जीवन तो त्यागमय अवश्य हो परन्तु उनका रहन-सहन, उनका ऐश्वर्य, वैभवशाली रोम के पोप के समान हो, क्योंकि जनता पर इस प्रकार के वैभव के गौरव का बड़ा सुखद प्रभाव पड़ता था। शंकराचार्य ने चारों दिशाओं में पीठ स्थापित कर धर्माध्यक्षों की मर्यादा को गौरवशालिनी बनाया था। उनके राजसी वैभव को देखकर 'हरिऔध' को अपार सुख मिलता था।

स्वामी दयानन्द जी उनके विचारों और भावनाओं के मूर्त आदर्श थे। हिन्दू-जाति की हीनावस्था, दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जाती जनसंख्या उन्हें बड़ा बेचैन करती थी। स्वामी जी की संगठन शक्ति, हिन्दू-जाति और धर्म की रक्षा के लिए उनकी अद्भुत योजनाओं को वह अत्यन्त आवश्यक समझते थे। उनकी धारणा थी कि यदि स्वामीजी ने हिन्दू समाज की रक्षा का उत्तरदायित्व न सँभाला होता तो हिन्दू जाति रसातल में चली गयी होती। उन्हें वह हिन्दू जाति के महान उद्धारक के रूप में श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। एक बात और थी। स्वामी जी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दी भाषा को महत्त्व प्रदान किया और उसे राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का यत्न किया। हिन्दी के प्रति उनके इस उपकार को वह कभी भूलते न थे। हरिऔध सनातनधर्मी परिवार में उत्पन्न अवश्य हुए थे परन्तु उनमें किसी धर्म विशेष अथवा सम्प्रदाय के प्रति किसी प्रकार का दुराग्रह न था। वे दूसरे धर्म की अच्छी बातों को स्वीकार करने में कभी पीछे नहीं हटते थे। स्वामी जी के शुद्धि अभियान, बाल-विवाह-विरोध आदि के सिद्धान्तों को वह पूर्णरूपेण मानते थे। जाति भेद की संकीर्णता में भी उनका उतना अधिक विश्वास न था। स्वामी जी के इन कार्यों से उन्हें अपने काव्य की रचना और उद्बोधनात्मक साहित्य लिखने में प्रेरणा मिली थी। इन दो महापुरुषों ने उनके विचार जगत् को प्रभावित किया था। उनके व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करने वालों में कुछ अन्य व्यक्ति भी थे।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और महर्षि-कल्प महामना मदन मोहन मालवीय जी ने उनके वैयक्तिक जीवन को बहुत प्रभावित किया था और एक प्रकार से ये व्यक्ति उनके जीवन के आदर्श थे। विद्यासागर जी का सादा, सरल, उदार तथा दीनबंधु रूप उनको इन गुणों पर चलने के लिए प्रेरित करता था। विद्यासागरजी के जीवन की अनेक कथाएँ कहते-कहते वह भाव-विभोर हो जाया करते थे। उनके अगाध पांडित्य का चाहे वे लोहा न मानते रहे हों परन्तु उनके सरल स्वभाव, दानशीलता और दीनबन्धुता से वे बड़े प्रभावित रहे।

हरिऔध विद्यासागर जी के जीवन की इन घटनाओं को कहते-कहते विह्वल हो जाते थे। यही उनका भी हाल था। यदि कोई दीन-दुखी उनसे सहायता की याचना करने आता और आर्थिक संकट के कारण वह सहायता न कर पाते तो वे बड़े उद्विग्न हो उठते थे और उन्हें बड़ी बेचैनी हो जाती थी। पास धन रहने पर वह अपने को रोक न सकते थे। हिन्दी भाषा के विभिन्न कार्यों के लिए, किसी दीन छात्र को आर्थिक सहायता देने के लिए उनके हाथ सदा खुले रहते थे। यही नहीं, कुछ विद्यार्थी तो नियमित रूप से उनके यहाँ रहकर आर्थिक सहायता प्राप्त करते थे।

महामना मालवीय जी को तो वह महर्षियों की शृंखला में अन्तिम कड़ी के रूप

में स्वीकार करते थे। उनके सात्त्विक जीवन, दुग्ध-धवल वस्त्र, भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए जीवनार्पण की कामना को वह बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। मालवीय जी के प्रगतिशील ब्राह्मणत्व, हिन्दू जाति के उत्थान के अन्त्यज भाइयों को भी गले लगाने के विचार का वह शत-प्रतिशत अनुमोदन करते थे। महामना के प्रति उनमें इतनी अगाध श्रद्धा थी कि यदि कोई उनकी आलोचना करता था तो वह बड़े ही दुःखी हो जाया करते थे और उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे। वह मार्मिक पीड़ा के साथ कहते, "क्या कहा जाय, ऐसे महामना और त्यागी तपस्वी पर भी लोग उँगली उठाने से नहीं चूकते।" मालवीय जी के जन्मोत्सव अथवा उनकी वर्षगाँठ के दिन वे बड़े उत्साह से उनके निवास-स्थान पर जाते और अपनी सुमनाञ्जलि के साथ काव्यांजलि अर्पण कर बड़ी भक्ति के साथ उनका चरण-स्पर्श करते थे। मालवीय जी ही एक मात्र व्यक्ति थे, जिनका वह चरण-स्पर्श करते थे। मालवीय जी के आह्वान पर ही उन्होंने अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् अपने जीवन का अन्तिम समय हिन्दूविश्वविद्यालय की सेवा में अर्पित कर दिया और सतहत्तर वर्ष की अवस्था तक अनवरत सेवा में लगे रहे।

इन महापुरुषों के अतिरिक्त एक महापुरुष और थे, जिसके स्वतंत्र विचार तथा 'अनलहक़' की घोषणा की ध्वनि उनके जीवन में जीवनी-शक्ति का संचार करती थी। वह थे हजरत मंसूर। बाबा मंसूर ने जिस अदम्य वीरता के साथ उन्नत ललाट किये हुए 'अनलहक़' का प्रचार किया, उसकी गाथा कहते-कहते उनके नेत्रों में विचित्र आभा के दर्शन होने लगते थे। हजरत मंसूर जब सूली पर चढ़ाये गये, उस समय के दृश्य का वर्णन उनके लिए बड़ा ही सुखद होता था और वह उस समय यह अनुभव करते थे कि वे स्वतः ब्रह्मस्वरूप हैं। भगवान शंकराचार्य और मंसूर से प्रभावित होने का एक यह भी कारण था कि उसके द्वारा उन्हें अपने में ही ईश्वरीय सत्ता का अनुभव करने का अवसर मिलता था। वह अपनी काया के बाहर ईश्वर के अस्तित्व में चाहे न विश्वास करते रहे हों; परन्तु यह तो था ही कि वे अपनी आत्मा को अनन्त ज्योति का एक अंश और ब्रह्म की लव की एक चिनगारी के रूप में अवश्य देखते थे। विश्व कल्याण की भावना जिस हृदय में उत्पन्न हो, वह स्वतः ब्रह्म है, एक नियामक है, ऐसी धारणा थी। स्वाभाविक था कि इस प्रकार के स्वतंत्र विचार के कारण रूढ़िगत विचारों से उनकी भावना का मेल नही बैठता। बाह्य पूजा-पाठ से इसीलिए वे अपने को बहुत दूर रखते थे।

अन्त में, यदि मैं एक व्यक्तिगत घटना का उल्लेख न करूँ तो 'हरिऔध' के व्यक्तित्व को समझना कठिन हो जायेगा। हरिऔध के अनुज **श्री गुरुसेवक उपाध्याय'** भले ही उनके अनुज रहे हो, परन्तु वे उनके व्यक्तित्व के प्रपूरक रहे हैं और अंग्रेज़ी न पढ़ने के कारण जो हीन-भावना की ग्रन्थि उनमें उत्पन्न हो गयी थी, उसको उन्होंने

बहुत कुछ बड़े कौशल से दूर करने का प्रयास किया था। पंडित गुरुसेवक जी भी बड़े ही यशस्वी और प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। ब्रिटिश काल में वे बड़े उच्च पद पर प्रतिष्ठित रहे। उन्होंने देश-विदेश का भ्रमण किया था और संसार की गतिविधियों का उन्होंने तटस्थ भाव से गहन अध्ययन किया था। गीता उनका प्रिय ग्रन्थ था और उसके द्वारा उन्होंने चिंतन-मनन की वह स्थिति प्राप्त कर ली थी कि वैयक्तिक अथवा पारिवारिक बाधाएँ उन्हें विचलित नहीं कर पाती थीं। वे वीतराग भले ही न हुए हों परन्तु उन्होंने परिवार के मोह से अत्यन्त असंस्पृक्त रहने का यत्न किया था। ईश्वर में, ईश्वरीय शक्ति में उनकी एकांत निष्ठा थी। सरकारी उच्च पद पर कार्य करते रहने पर भी वे परम गाँधी-भक्त और राष्ट्रीय विचार के व्यक्ति थे। यह भी सत्य है कि ऐसे कर्मठ अनुज की तन-मन-धन की वास्तविक सहायता के अभाव में 'हरिऔध' के व्यक्तित्व का इतने उच्च स्तर तक विकास न हो पाता। देश काल में कितनी शीघ्रता से परिवर्तन हो रहा है, इसका ज्ञान उन्हीं के द्वारा उनको होता था। यदि उन्हें विचार-परिवर्तन की प्रेरणा मिलती थी तो वह गुरुसेवक जी से ही प्राप्त होती थी।

चूँकि गुरुसेवक जी राजकीय सेवा में उच्च पद पर आसीन थे, अतः अयोध्या सिंह जी को पर्याप्त सुविधाएँ भी प्राप्त हुईं। उन्हें जब कभी किसी समस्या का सामना करना पड़ता था तब वे अपने अनुज से विचार-विनिमय करते थे और उनकी सम्मति के अनुसार कार्य करते थे। सामाजिक विचारों में भी गुरुसेवक जी के कारण उन्हें नये दृष्टिकोण प्राप्त हुए थे। मालवीय जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जब महिला-विद्यालय की स्थापना की, तब उन्होंने 'हरिऔध' से वहाँ के हिन्दी-विभाग का कार्य सँभालने को कहा। उनके सम्मुख बड़ी जटिल समस्या थी। वे सामाजिक निन्दा के भय से स्त्रियों की छाया से दूर रहने वाले प्राणी थे। वहाँ स्त्रियों के समाज में जाकर शिक्षा का कार्य करना उनकी कल्पना से परे था। उन्होंने तो यहाँ तक निर्णय कर लिया था कि मैं महिला-विद्यालय में कार्य करने नहीं जाऊँगा, चाहे मुझे अपने पद से अवकाश ही क्यों न ग्रहण करना पड़े! परन्तु अपनी समस्या को उन्होंने जब अपने अनुज के सम्मुख उपस्थित किया तब उन्होंने उन्हें समय के प्रवाह का ज्ञान कराया और प्राचीन तथा नवीन काल में अंग्रेज़ी शिक्षा के कारण क्या नवीन स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं—इसे समझाया। इसके बाद हरिऔध महिला विद्यालय में पढ़ाने गये। बाद में तो वे इस विद्यालय में चले आने के कारण बड़े प्रसन्न रहते थे। उनका विचार था कि बालिकाएँ बालकों से कहीं अधिक अनुशासनप्रिय, सुशील, संकोची तथा अध्ययनशील होती हैं। वे उनके व्यवहार से बड़े प्रसन्न रहते थे।

जब कभी दोनों भ्राताओं में ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध में वाद-विवाद होता था, तब वह दृश्य बड़ा ही मनोरंजक होता था। 'हरिऔध' अपने अनुज के विस्तृत

ज्ञान, अनुभव और देशाटन के कारण उत्पन्न उदार दृष्टिकोण का बड़ा सम्मान करते थे और उनके विचारों को बड़ी तन्मयता से सुनते थे। यही नहीं, उनके सम्बन्ध में जब कभी वे किसी से बातचीत करते थे तो अपने विद्वान तथा अनुपम प्रशासक अनुज के लिए उन्हें गर्व का अनुभव होता था। गुरुसेवक जी के आदर्श महात्मा गाँधी और कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ थे। इन दो महापुरुषों के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा थी और वे उनके विचारों के अनुसार अपने जीवन को ढालने का निरन्तर प्रयत्न करते रहे।

'हरिऔध' के सामाजिक,व्यावहारिक तथा सांस्कृतिक विचारों पर उनके अनुज के विचारों की गहरी छाप है, इसलिए वे हरिऔध के व्यक्तित्व के प्रपूरक हैं।

प्रारंभिक रचनाएँ

उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में धार्मिक और सामाजिक विषमता के कारण तथा हिन्दी की जिस प्रकार उपेक्षा हो रही थी, इसके कारण कुछ समय पश्चात् हिन्दी के साहित्यिकों का ध्यान भी भारतीय सभ्यता, संस्कृति और अतीत की ओर गया। उन्होंने अपनी सभ्यता, संस्कृति, भाषा और साहित्य के पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता का अनुभव किया। इस काल में तीन प्रमुख साहित्यकार साहित्य रंगमंच पर आते हैं, वे हैं **भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र** और **बालमुकुन्द गुप्त**। इन्होंने जनता को विनाश की परिस्थिति से बचाने के लिए सतर्क किया। इस काल में कविता की भाषा ब्रज-भाषा ही थी। अधिकांश कवि ब्रजभाषा में ही काव्य-रचना करते थे। यह बात अवश्य हुई कि कालान्तर में ब्रजभाषा की रचनाओं का स्वरूप बदला। यद्यपि रीतिकालीन विचारधारा का प्रभाव तो बना रहा। श्रृंगार रस की रचनाओं का ही बाहुल्य होते हुए भी जीवन, समाज और अन्य विषयों पर भी कविताएँ लिखी जाने लगी थीं।

समय के प्रभाव से हरिऔध की प्रारंभिक रचनाएँ ब्रज भाषा में ही रची गयीं। सन् 1880 से लेकर 1889 तक वे अधिकतर ब्रज भाषा में ही काव्य-साधना करते रहे। सन् 1907 में उन्होंने **'ऋतु मुकुर'** अथवा **'ऋतु दर्पण'** नामक एक पद्य संग्रह भी तैयार किया था। इस काल में उनके रचित और प्रकाशित, **कृष्ण-शतक प्रेमाम्बु वारिधि, प्रेमाम्बु प्रस्रवण, प्रेमाम्बु प्रवाह, रसिक रहस्य, प्रेम पुष्पोपहार** और 'ऋतु मुकुर' ग्रंथ हैं।

कृष्ण शतक 1980 में **हरिऔध** कृत 120 दोहों का संग्रह है। पुस्तक के नाम से ही वर्ण्य विषय का आभास मिल जाता है। कवि ने इन दोहों में कृष्ण का गुण-गान किया है और कहीं-कहीं आत्मनिवेदन के रूप में दैन्य भाव का भी प्रदर्शन हुआ है। हरिऔध पर उनकी माता और ताऊ की कृष्ण भक्ति का जो प्रभाव पड़ा था, उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब रचनाओं में झलकता है। **प्रेमाम्बु वारिधि** (1899) हरिऔधजी की स्तुति-विनय-प्रार्थना विषयक पदावली का संग्रह है। इस संग्रह में सूरदास के पदों की शैली में लिखे गये 75 पदों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में भी कवि

ने कृष्ण का गुणगान किया है। कुछ पद तो बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं और यदि हरिऔध का नाम हटा दिया जाये तो सूर के पदों में वे खप सकते हैं। **प्रेमाम्बु-वारिधि** के कुछ पदों में कृष्ण से तारने की प्रार्थना की गयी है। कुछ में अपनी हेयता प्रकट की गयी है और कुछ पदों में कृष्ण की शक्ति, उनके रूप, शील और गुणों का वर्णन है।

प्रेमाम्बु प्रस्रवण शान्त और करुण रस संबंधी कविताओं का संग्रह है। तत्कालीन ब्रज भाषा की समस्या पूर्ति संबंधी कविताओं का इस संग्रह में संकलन किया गया है। इसमें 56 कवित्त और 30 सवैये हैं। इन कविताओं में संसार की सारता तथा समाज में साधु और मानव के कर्तव्यों का उद्‌घाटन किया गया है। शरीर की नश्वरता प्रतिपादित कर भगवान से सहायता की प्रार्थना की गयी है। कवि ने एक उपदेशक की भाँति यह उपदेश दिया है कि अच्छी करनी करने से ही संसार में मनुष्य प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है और परलोक में भी उसका जीवन सुखी हो सकता है।

प्रेमाम्बु प्रवाह(1899)श्री कृष्ण वियोग-विधुरा गोपियों की कातरोक्ति संबंधी ब्रज भाषा की कविताओं का संकलन है। हरिऔध ने अपने पिता को एक कवित्त सुनाया था। उस कवित्त पर वे इतने रीझे कि कई दिनों तक उसे गुनगुनाते रहे और उसी प्रकार के कुछ और कवित्त लिखने की आज्ञा दी। पिता की आज्ञा से हरिऔध ने इन सवैयों और कवित्तों की रचना की। इस संग्रह में 42 सवैये 30 कवित्त और आठ पद संग्रहीत हैं। इन रचनाओं में हरिऔध ने गोपियों तथा राधा के जिस रूप का बीज रूप में संकेत किया है, वही रूप उनकी कृष्ण संबंधी प्रौढ़ रचना में पूर्ण रूप से विकसित हुआ। ग्रंथ की यह विशेषता है कि यद्यपि तत्कालीन समस्या पूर्ति के रूप में इन कविता३.ों की रचना हुई है तथापि उस समय की श्रृंगारिक भावना तथा ऊहात्मक अभिव्यक्ति का इनमें अभाव है। वियोगजन्य पीड़ा और विषाद का कवि ने बड़े ही हृदयस्पर्शी रूप से वर्णन किया है।

रसिक रहस्य (1899) कबीरदास के 32 श्रेष्ठ तथा प्रतिनिधि दोहों पर हरिऔध ने कुंडलियों की रचना की थीं। इन कुंडलियों में उन्होंने दोहों के विचारों का पल्लवन किया और कुछ कुंडलियों में अपनी अनुभूतियों का भी समावेश किया।

'**प्रेम पुष्पोपहार**' और'**ऋतु मुकुर**' भी हरिऔध की ब्रज भाषा संबंधी प्रारंभिक रचनाओं के संग्रह हैं। **प्रेम पुष्पोपहार** में कुछ समस्या पूर्ति और कुछ मौलिक रच-नाओ का संकलन है। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक परिस्थिति और भक्ति संबंधी कविताओं की इसमें प्रधानता है। **ऋतु मुकुर** (रचनाकाल 1907) 1917 में प्रकाशित हुआ था। 1907 में यह पुस्तक **ऋतु मुकुर** के नाम से प्रकाशित हुई थी परन्तु बाद में 1917 में **ऋतु दर्पण** के रूप में इसका पुनर्मुद्रण हुआ। इस पुस्तक

में प्राचीन परम्परा के अनुसार वर्णित षड्ऋतुओं का वर्णन है। उक्त ग्रंथ 67 कवित्त और 12 सवैयों का संकलन है।

हरिऔध ब्रज भाषा में काव्य रचना तो कर रहे थे लेकिन उनका ध्यान इस ओर भी था कि हिन्दी भाषा का ऐसे रूप में विकास हो कि उसकी गद्य और पद्य की भाषा एक हो। दोनों में किसी प्रकार का अन्तर न हो। उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में गद्य की भाषा मिश्रित भाषा थी। वह खड़ी बोली और ब्रज भाषा का मिश्रित रूप थी। इस समय तक खड़ी बोली के स्वरूप का न तो निर्णय हो सका था और न कोई ऐसा साहित्यकार सामने आया, जो सशक्त रूप में पद्य और गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग कर भाषा के स्वरूप का निर्णय कर सके। हरिऔध के प्रयोग चल रहे थे। जहाँ वे एक ओर ब्रज भाषा में कविताएँ कर रहे थे वहीं डॉ० जार्ज ग्रियर्सन के अनुरोध पर उन्होंने विशुद्ध खड़ी बोली में एक ग्रंथ लिखने का प्रयत्न किया। 1899 में ही उन्होंने खड़ी बोली में **'ठेठ हिन्दी का ठाठ'** नामक कृति की रचना की, जो उनकी पूर्णतः मौलिक कृति है। इस ग्रंथ में केवल हिन्दी और वह भी ठेठ हिन्दी के शब्दों का प्रयोग हुआ। अनेक वर्षों तक यह ग्रंथ इंडियन सिविल सर्विस के पाठ्यक्रम में रहा और जो भी अँग्रेज भारत में इस सेवा के अन्तर्गत कार्य करने आता था, उसे यह ग्रंथ पढ़ना पड़ता था।

हरिऔध की ब्रज भाषा संबंधी प्रारंभिक रचनाओं से एक बात का पता चलता है। यद्यपि उन्होंने शृंगार संबंधी रचनाओं का प्रणयन किया और कुछ रीति कालीन कविताएँ भी लिखीं, पर वे ब्रज भाषा की तत्कालीन परम्परा से हट कर भी ब्रज भाषा में रचना कर रहे थे। उन्होंने जीवन की समस्याओं तथा समाज की स्थिति पर भी रचनाएँ कीं। कृष्ण उनके लिए रीतिकालीन विलासी रसिया मात्र न थे। उन्होंने उनके कर्मयोगी और समाज सेवी रूप को भी निखारने का प्रयत्न किया। आगे चलकर उन्होंने ब्रज भाषा को नयी दिशा दी। नायक और नायिकाओं के नये रूपों की उद्भावना की। उनकी प्रारंभिक रचनाएँ उनके साहित्यिक जीवन के प्रारंभिक अभ्यास के रूप में ही हैं। उनमें कोई विशेष मौलिकता अथवा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का प्रदर्शन तो नहीं मिलता लेकिन इस बात के संकेत अवश्य दीख पड़ते हैं कि कवि लीक से हटकर चलने का प्रयत्न कर रहा है।

हरिऔध ने अपने प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन काल में खड़ी बोली में कुछ रचनाएँ कीं। उनमें दो उपन्यास और दो नाटक हैं। उपन्यासों के नाम हैं **'ठेठ हिन्दी का ठाठ'** और **'अधखिला फूल'** और दो नाटक हैं, **'रुक्मिणी परिणय'** और **'प्रद्युम्न विजय व्यायोग'**। उपन्यासों की रचना किस उद्देश्य से की गयी थी, उसका संकेत हम ऊपर दे चुके हैं, **'ठेठ हिन्दी का ठाठ'** बहुत ही छोटा और **'अधखिला फूल'** बड़ा उपन्यास है। खड़ी बोली के प्रारंभिक युग में उनकी रचना हुई थी इसलिए इनका महत्त्व है। लक्षणों की दृष्टि से ये दोनों पुस्तकें उपन्यास के अन्तर्गत आती

हैं। इन उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता है, लोक रंजन का भाव। हिन्दी संसार के सम्मुख सामाजिक जीवन से संबंध रखनेवाले उपन्यास लेकर जनता के सामने आये। उस समय समाज में अनेक प्रकार के अंध विश्वास और अशुद्ध धारणाएँ फैली हुई थीं। उनको दूर करने की दृष्टि से उन्होंने उपन्यासों की रचना की। इनके उपन्यासों में तत्कालीन समाज में व्याप्त 'अनमेल विवाह' तथा साधु समाज की दीन दशा आदि का वर्णन मिलता है। इनके उपन्यासों के नायक नायिका जीवन के घात-प्रतिघात से हताश होकर अकर्मण्यों का-सा जीवन नहीं व्यतीत करते। उनके जीवन की निराशा, एक क्षेत्र की असफलता उन्हें ऐसी शक्ति प्रदान करती है कि वे दुगुने उत्साह से जीवन क्षेत्र में कर्मठ समाज सेवी के समान कार्य करने लगते हैं।

'हरिऔध' के उपन्यासों की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है, भारतीय नारी का पवित्र और पूज्य रूप चित्रण। इन उपन्यासों में भारतीय नारी का आदर्श रूप चित्रित किया गया है। भारतीय समाज में विषम विवाहों के कारण जो अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उनका समाधान नारी अपने सतीत्व की शक्ति से किस प्रकार कर सकती है, इनका इन उपन्यासों में विस्तार से वर्णन हुआ है। 'हरिऔध' के उपन्यासों की भारतीय नारी समानता के आधार पर अपने पति के साथ जीवन क्षेत्र में कार्य करने की अधिकारिणी है।

उस समय जब ऐयारी, तिलस्मी, जासूसी, उपन्यासों और शृंगारी कविता का बोल-बाला था, उन्होंने उपन्यास क्षेत्र में इस प्रकार की नवीन भावना का प्रवर्तन किया। उपन्यास की दृष्टि से इन दो उपन्यासों का चाहे विशेष महत्त्व न हो लेकिन उपन्यासों की दृष्टि से इन दो उपन्यासों को अग्रदूत ही कहा जायेगा। **'ठेठ हिन्दी का ठाठ'** और 'अधखिला फूल' में भारतीय संस्कृति और परंपरा के विशुद्ध चित्र निर्मित हुए हैं। भारतीय समाज का किन आदर्शों पर संगठन होना चाहिए, इसओर भी लेखक ने संकेत किया है। समाज में चरित्रवान स्त्री और पुरुषों द्वारा किस प्रकार की क्रांति का संदेश प्रसारित किया जा सकता है, इसका उदाहरण हमें **'अधखिला फूल'** के देव स्वरूप और देवहूती के चरित्र से मिलता है। **'ठेठ हिन्दी का ठाठ'** और **'अधखिला फूल'** के कथानक में बड़ा साम्य है। दोनों कथानकों का उद्देश्य भी एक ही है।

"ठेठ हिन्दी का ठाठ" के रामनाथ ने अपनी पुत्री देवबाला का विवाह बाल-स्नेही देवनन्दन से न कर रामनाथ नामक एक उच्च वंश के परन्तु लंपट और चरित्रहीन व्यक्ति से कर दिया। वे हड्डी को महत्त्व देते थे। उन्होंने व्यक्ति के गुणों की ओर ध्यान नहीं दिया। देवबाला का पति उसे छोड़कर कलकत्ता भाग जाता है और वहीं किसी नीच स्त्री से उसका संबंध हो जाता है। वह देवबाला और अपने पुत्र को भूल जाता है। अनेक प्रकार के दुष्कर्मों में उसका समय बीतने

लगता है। दिन प्रतिदिन देवबाला की दशा शोचनीय होती जाती है। अकस्मात् देवनन्दन से उसकी भेंट होती है।

देवनन्दन देवबाला की स्थिति देखकर बहुत दुःखी होता है। वह अविवाहित रहकर समाज सेवा में ही जीवन व्यतीत कर रहा है। उसने देवबाला की सहायता की और अन्त में कलकत्ता जाकर उसके पति रामनाथ का पता लगाया। रामनाथ को वह समझा-बुझाकर घर लाता है। घर आने पर देवबाला जैसे ही उसका दर्शन करती है, उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। पूरे उपन्यास में देवबाला और देवनन्दन के चरित्र के विकास के लिए सुन्दर पीठिका तैयार की गयी है। देवबाला भारतीय सती नारी का प्रतीक है और उसे जीवन का कोई भी प्रलोभन अपने पथ से नहीं डिगा सका। जीवन का अंतिम क्षण समीप देखकर उसे इस बात का ही विशेष कष्ट है कि वह अपने पति का दर्शन नहीं पा सकेगी। वह कहती है—"जीजी, एक बात और मन में रह जाती है। क्या अब मैं उनको न देख सकूँगी ? इस घड़ी जो उनको एक बार देख पाती तो सब दिन का दुःख भूल जाती ।"

देवबाला के चरित्र का उज्ज्वल दीप उस समय और भी अधिक निखर उठता है जब कि उसकी हीनावस्था के समय देवनन्दन उससे मिलता है। देवनन्दन और देवबाला का स्नेह जब पर्याप्त प्रौढ़ता को पहुँच चुका था तब वह छिन्न-भिन्न हुआ। परन्तु दोनों ने भाग्य के विधान को नतमस्तक होकर स्वीकार किया। अपने पति के संबंध में सब कुछ जान लेने पर और उसके भाग जाने के बाद देवनन्दन से मिलने पर उसके जीवन में देवनन्दन के प्रति पुनः आकर्षण उत्पन्न हो सकता था। लेकिन ऐसी कठिन परिस्थिति में भी देवबाला और देवनन्दन ने अपने चरित्र की दृढ़ता का जो अनुपम उदाहरण सामने रखा है, वह भारतीय संस्कृति की गोद में पले लोगों में ही सम्भव हो सकता है। देवबाला और देवनन्दन का चरित्र समाज में एक ऐसे पुनीत प्रेम की नींव डालता है, जिससे मानव की सहानुभूति सहज और निःस्पृह भाव से आकर्षित होती है। देवबाला और देवनन्दन ने कर्त्तव्य की वेदी पर विवाह के पवित्र संस्कार के नाम पर अपने सहज स्नेह की बलि दी है।

देवनन्दन का चरित्र एक अत्यन्त सच्चरित्र समाज सेवी और परदुःख कातर युवक का चरित्र है। प्रेम का फल न पाने पर वह निराश होकर अकर्मण्य नहीं होता, बल्कि दूनी शक्ति से समाज के उत्थान में लग जाता है। आजन्म अविवाहित रहकर वह समाज और देश की सेवा करता है। वह साधु न होने पर भी इन्द्रिय संयमी है। उससे किसी का दुख नहीं देखा जाता। उसके चरित्र में इतनी शक्ति है कि वह रामनाथ जैसे व्यक्ति को भी सत्यपथ पर लगा सकता है। '**ठेठ हिन्दी का ठाठ**' के रमाकान्त भारतीय रूढ़िगत परम्परा और अंध विश्वासों के प्रतीक हैं। आज भी हमारे समाज में रमाकांत ऐसे व्यक्ति मिल जायेंगे। उनके लिए वर की योग्यता, चरित्र और विद्या का महत्त्व नहीं। वे तो केवल वंश देखकर

संबंध करते हैं। देवनन्दन उसके विपरीत निःस्पृह प्रेम, त्याग और तपस्या का मूर्तिमंत रूप है। हरिऔध के विचारों का वह प्रतिनिधित्व करता है।

'अधखिला फूल' नामक हरिऔध का दूसरा उपन्यास **'ठेठ हिन्दी का ठाठ'** के विचारों, भावनाओं और चरित्र का विकसित रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। 'अधखिला फूल' में तिलस्मी और ऐयारी कथा वाले बीते युग तथा तत्कालीन नवीन भावना से ओतप्रोत युग की झाँकी मिलती है। इस उपन्यास के कुछ दृश्य जासूसी उपन्यासों की श्रेणी के भी है। धोखे के किवाड़, खिड़कियाँ और कमरे तथा सुरंग आदि का जो वर्णन हुआ है, वह हिन्दी उपन्यास युग के प्रारंभिक काल का प्रतीक है। **'अधखिला फूल'** के देव स्वरूप और देवहूती **'ठेठ हिन्दी का ठाठ'** के देवबाला और देवनन्दन के विकसित व्यक्तित्व हैं। **'अधखिला फूल'** की देवहूती भारतीय नारी का एक उज्ज्वल उदाहरण है। वह पर पुरुष से वार्तालाप करने में हिचकती है। यौवन की देहली पर जैसे ही उसने पैर रखा, मुहल्ले के कामिनी मोहन की दृष्टि उस पर पड़ी। कामिनी मोहन **'अधखिला फूल'** का खलनायक है। उसने देव हूती को चंगुल में फँसाने का सब यत्न किया परन्तु सफल न हो सका। देव स्वरूप ने प्रत्येक भयंकर परिस्थिति में पहुँचकर उसकी सहायता की। यह सहायता पूर्णतः निःस्वार्थ थी और वह देवहूती से अपना संबंध भी नहीं जानता था। देवहूती ने बड़ी दृढ़ता से अपने सतीत्व की रक्षा की और कामिनी मोहन के किसी भुलावे में नहीं आई। कामिनी मोहन के अन्त के पश्चात् जब देवहूती और देव स्वरूप उसकी सम्पत्ति के व्यवस्थापक होते हैं तब वे उसका एक पैसा भी अपने लिए व्यय नहीं करते। देवहूती ने सारी सम्पत्ति जन हित में व्यय की। इन दोनों ने वसंत नगर को एक आदर्श स्थान बना दिया, जहाँ कोई भी दुखी न था। सबके लिए कार्य की, रहने-सहने और भोजन की व्यवस्था थी। देवहूती एक समाज-सेविका के समान अनाथ स्त्रियों, बच्चों और दुखियों की सेवा करती है। महिला कल्याण केन्द्र में अनाथ स्त्रियों को इस प्रकार की शिक्षा देने की व्यवस्था करती है कि वे अपने पैरों पर खड़ी हो सकें।

देवहूती उपनामधारी स्त्री को मरा सुनकर देव स्वरूप घर छोड़कर साधुओं के साथ विरागी हो गया था। उसने अपना जीवन जनता की सेवा में लगा दिया था। जहाँ कहीं भी अत्याचार या पीड़ा की बात सुनता, वह वहीं जाकर लोगों की सहायता करता। कामिनी मोहन के भयंकर षड्यन्त्र से उसने देवहूती को दो बार बचाया। कामिनी मोहन भी देव स्वरूप के इन कार्यों से बड़ा प्रभावित हुआ। वह देवहूती के चरित्र से भी इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी सम्पत्ति की अधिकारिणी बना दिया। देव स्वरूप ने एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में ही सारा सेवा कार्य किया था। देव स्वरूप देवहूती का पति है, यह रहस्य तो कामिनी मोहन की मृत्यु के पश्चात् खुलता है। देव स्वरूप साधु वेश त्यागकर गार्हस्थ्य

जीवन में प्रवेश करता है और देवहूती के साथ आदर्श जीवन व्यतीत करता है। ग्राम के लोग दोनों को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। देवस्वरूप की एक बड़ी विशेषता यह रही कि कामिनी मोहन की अपार सम्पत्ति मिलने पर उसने उसकी एक पाई भी व्यक्तिगत कार्यों के लिए व्यय नहीं की। उसने कामिनी मोहन की सम्पूर्ण सम्पत्ति का बड़ी सुन्दर रीति से सदुपयोग किया। ग्राम में अनेक प्रकार की ऐसी संस्थाएँ खोली गयीं, जिनसे वहाँ की जनता का आर्थिक,सामाजिक और नैतिक विकास हुआ।

देवस्वरूप 'हरिऔध' के जीवन, उनके दैनिक कार्यक्रमों और उनके विचारों का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करता है। देवस्वरूप आज के भारत का सर्वोत्तम कार्यकर्त्ता ओर आदर्श नेता है। उसके जीवन में जितने भी संघर्ष आये, उनका उसने बड़ी दृढ़ता से सामना किया। 'हरिऔध' का यह उपन्यास अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। 'हरिऔध' साहित्यका बीज इस उपन्यास में निहित है। 'हरिऔध' *की समस्त साहित्य शैलियों के बीज इस ग्रंथ में वर्तमान हैं। यह ग्रंथ उनकी भावी* साहित्य योजना का बीज रूप है। **'अधखिला फूल'** भी ठेठ हिन्दी में लिखा गया उपन्यास है लेकिन इसमें **'हरिऔध'** की बोल-चाल संबंधी रचना का भी उदाहरण वर्तमान है। इसके रूप का एक उदाहरण देखें—

फिर रहे हो बने जो मतवाले।
तो किसी के पड़ोगे तुम पाले।
जो कसर काढ़ लेगा सब दिन की,
जो किसी की न माननेवाले॥

इस प्रकार, देवस्वरूप और देवहूती के चरित्र चित्रण का महान विकसित रूप हमें 'हरिऔध' के **'प्रिय प्रवास'** और **'वैदेही वनवास'** के नायक-नायिकाओं के रूप में मिलता है। **'अधखिला फूल'** के बारहों अध्याय प्रकृति वर्णन से प्रारंभ होते हैं। आश्चर्य की बात है कि हरिऔध ने जितने प्रकार के प्रकृति चित्रण किये हैं, उनमें से अधिकांश के उदाहरण इस उपन्यास में मिलते हैं। 'हरिऔध' के सामाजिक और अन्य क्षेत्रों संबंधी विचारों का भी किसी-न-किसी रूप में इस उपन्यास में उल्लेख किया गया है। युवक, साधु, ब्राह्मण और नेता आदि के क्या लक्षण तथा गुण होने चाहिए, इनका भी इस उपन्यास में वर्णन हुआ है।

इस उपन्यास की सबसे आश्चर्य-चकित करनेवाली बात है, आज के भारत की योजनाओं का बीज। इस उपन्यास की रचना लगभग 8 दशक पूर्व हुई थी। लेकिन आज ग्रामोत्थान की जिन योजनाओं का स्वतंत्र भारत सरकार संचालन कर रही है, उनकी योजना 'हरिऔध' के देवस्वरूप ने सात दशक पूर्व ही वसंत नगर में कार्यान्वित कर दी थी। देवस्वरूप ने वसंतनगर में धर्मशाला, अनाथालय, पाठशाला, सदावर्तशाला, चिकित्सालय, विधवाश्रम, महिला-मंगल संघ और कन्या-

पाठशाला का निर्माण कराया था। उनकी धर्मशाला में अतिथियों को भोजन भी मिलता था। अनाथालयों में लड़के-लड़कियों के रहन-सहन और शिक्षा-दीक्षा की ऐसी व्यवस्था थी कि भले घर के बच्चे भी इस प्रकार न रहते होंगे। शिक्षालयों में बिना किसी प्रकार के भेद-भाव, बिना जाति का विचार किये हुए समान रूप से शिक्षा दी जाती थी। सदावर्तशाला सरकार की तकावी योजना है। देवस्वरूप ने गाँव में जो हट्टे-कट्टे दीन दुखी काम करने योग्य थे, उन्हें धन, अन्न और गाय-बैल देकर अनेक प्रकार के कामों में लगाया। जो व्यक्ति अपंग थे, उनके भोजन की व्यवस्था थी और उपयुक्त रीति से उनकी देख भाल होती थी। महिला मंगल योजना के अंतर्गत गाँव की असहाय और अनाश्रित महिलाओं के लिए वृत्ति की व्यवस्था की गई थी। उन्हें सिलाई, कढ़ाई, सूत कातने आदि की शिक्षा दी जाती थी। उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बाजार में विक्रय के लिए भेजा जाता था। 'हरिऔध' के दोनों उपन्यास न केवल उनकी कल्पनाशीलता के उदाहरण हैं, वरन उनकी रचनात्मक विचार-धारा का संकेत करते हैं। वे भारतीय जन-जीवन की किस प्रकार व्यवस्था चाहते थे, इसका भी संकेत करते हैं।

भारतेन्दु युग के अन्तिम चरण में उन्हीं के नाटकों की प्रणाली की अनुकृति में 'हरिऔध' ने दो नाटकों की भी रचना की। उनके नाम हैं, **श्री रुक्मिणी परिणय** और **प्रद्युम्न विजय व्यायोग**। पहला नाटक उनकी दूसरी कृति है। इसके संबंध में उन्होंने स्वतः लिखा है :—

> 'इस नाटक के प्रथम मैंने कोई दूसरा नाटक लिपिबद्ध नहीं किया है। नाटक क्या, वास्तव में बात तो यह है कि एक श्रीकृष्ण शतक नामक लघु पुस्तिका के अतिरिक्त इस नाटक के प्रथम अपर किंचित् ग्रंथ मेरे द्वारा न अनुवादित हुआ है, न रचा गया है। 'हरिऔध' के ये दोनों ही नाटक पौराणिक आख्यानों पर आधारित हैं और ये मात्र पठनीय हैं। इनका मंचन संभव नहीं।'

'रुक्मिणी परिणय' नाटक में नांदी प्रस्तावना और दस अंक हैं। मुख्यतः यह नाटक नौ अंकों का है और एक अंक परिशिष्ट अथवा अतिरिक्त अंक के रूप में रखा गया है। श्री रुक्मिणी याचकों द्वारा कृष्ण का गुणगान सुनती हैं और याचकों के द्वारा ही उनके हृदय में कृष्ण के प्रति राग उत्पन्न होता है। राजा रुक्म कृष्ण को अपने यहाँ निमंत्रित करता है और उनके आने पर राजसभा में उनका अपमान कर शिशुपाल से रुक्मिणी के विवाह की घोषणा करता है। परन्तु रुक्मिणी के हृदय में तो कृष्ण का निवास हो चुका था अतः वे पत्र भेजकर अपनी रक्षा और उद्धार की प्रार्थना करती है। राजा रुक्म के यहाँ शिशुपाल की बारात आती है परन्तु ठीक उसी समय कृष्ण भी रुक्मिणी का पत्र प्राप्त कर घटना स्थल पर पहुँच जाते हैं और रुक्मिणी का हरण करते हैं। कृष्ण युद्ध में समस्त नरेशों और राजा रुक्म को पराजित कर अपने भाई बलराम के साथ द्वारिका चले जाते हैं। अतिरिक्त

अंक में रुक्मिणी का हास-परिहास अंकित है ।

रुक्मिणी परिणय लिखा तो गया था व्यायोग से पूर्व परन्तु प्रद्युम्न विजय व्यायोग उसके पूर्व प्रकाशित हो गया था। इस नाटक की रचना के संबंध में नाटककार कहता है—

"फिर यदि मम रचित इस **प्रद्युम्न व्यायोग** में, जिसको मैंने भाषा कवि चक्र चूड़ामणि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र गोलोक वासी के संस्कृत से अनुवादित धनंजय विजय व्यायोग की छाया लेकर निर्मित किया है,महा-महा अशुद्धियाँ, बड़े-बड़े भ्रम हों तो विचित्र बात नहीं है ।"

इस व्यायोग में प्रद्युम्न के पराक्रम का वर्णन है। निकुम्भ ने आचार्य ब्रह्मदत्त और वसुदेव जी को धमकाया और कहा कि यज्ञ में मुझे यदि मान न दिया गया तो मैं यादवों को कारागार में बन्द कर दूँगा और ब्रह्मदत्त की पाँच सौ कन्याओं का हरण कर लूँगा । जब यज्ञ में उसे मान नहीं दिया गया तो उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य किया । प्रद्युम्न ने निकुम्भ पर आक्रमण किया और युद्ध कर वे ब्रह्मदत्त की पाँच सौ कन्याओं को मुक्त कराकर ले आये । इस युद्ध में निकुम्भ और उसके साथी राजागण परास्त हुए । इस व्यायोग में कृष्ण द्वारा निकुम्भ के मारे जाने की सूचना दी गयी है । व्यायोग में युद्धकथा आदि का वर्णन अन्य पात्रों से करा दिया जाता है, अतः इस व्यायोग में भी इन्द्र-प्रवीर और जयंत के वार्तालाप में इस युद्ध का वर्णन हुआ है ।

वास्तव में रुक्मिणी परिणय की रचना का मुख्य उद्देश्य है, कृष्ण का गुणगान। अतः उसके अभिनेय पक्ष पर लेखक ने ध्यान नहीं दिया है । हाँ, इस नाटक की कविताओं की भाषा में लालित्य और आकर्षण है परन्तु नाटकीय-तत्त्व की दृष्टि से यदि उस पर विचार किया जाये तो नाटक सफल नहीं कहा जा सकता । नाटक की भाषा पूर्णतः तत्सम बहुल है और संस्कृत शब्दों के जाल से आच्छादित है। यह नाटक शृंगार रस प्रधान है लेकिन वीर रस का भी पर्याप्त वर्णन है। यह नाटक पूर्णतः संस्कृत शैली में लिखा गया है। नाटक में भावुकता तो है परन्तु क्लिष्टता के कारण नाटक पठनीय रूप में भी मनोरंजक नहीं हो सका है।

'हरिऔध' का व्यायोग शास्त्रीय कसौटी में गिनाये गये लक्षणों के अनुरूप है। इसमें व्यायोग के लक्षणों का समावेश तो किया ही गया है; साथ ही, उसमें तत्कालीन भाषा के रूप का भी अच्छा उदाहरण मिलता है। नांदी और प्रस्तावना के उपरान्त नाटक प्रारंभ होता है। 'हरिऔध' ने इसमें अपनी वंशावली का भी वर्णन किया है। भारतेन्दु के धनंजय व्यायोग के समान ही इसका भी तृतीयांश पद्य और एक अंश गद्य का है।

'हरिऔध' की भाषा की विभिन्न शैलियों के अध्ययन की दृष्टि से इन नाटकों का थोड़ा महत्त्व है। लेखक ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा की अभिव्यक्ति के लिए

नाट्य साहित्य के क्षेत्र में इन दो नाटकों का निर्माण किया। व्यायोग है तो '**धनंजय व्यायोग**' की छाया पर निर्मित परन्तु यह उनकी मौलिक कृति है। भाषा की दुरूहता और लम्बे कथोपकथन आदि के कारण इनका मंच पर खेला जाना कठिन है और न ये दर्शकों का उपयुक्त रीति से मनोरंजन ही कर सकते हैं।

हरिऔध के व्यापक साहित्य में उनकी प्रारंभिक अनूदित कृतियों का भी अपना महत्त्व है। **वेनिस का बाँका, कृष्णकान्त का दान-पत्र, रिपवान विंकिल** आदि अनेक उल्लेख्य अनुवादित उपन्यास हैं। उस काल में हिन्दी साहित्य का बहुत बड़ा भाग अनुवादित होकर ही हमारे समक्ष आया है। फिर भी, जैसे रीति काल के नाम से परिचित अवधि में हिन्दी कवियों ने अपनी साहित्यिक प्रगति के लिए संस्कृत के भण्डार से पूँजी उधार ली, ठीक उसी तरह आधुनिक काल के आरम्भ में अंग्रेज़ी और बांग्ला हिन्दी के भण्डार के लिए सम्पन्न निधियाँ रही हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी गद्य के विकास के लिए बड़े प्रयत्नशील हुए तो उन्हें उन साधनों की खोज करनी पड़ी, जिनसे उक्त अभीष्ट की पूर्ति हो सकती थी। अपने अनुवाद कार्य द्वारा उन्होंने यह स्पष्ट संकेत दिया कि अपने साहित्य का भण्डार अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रन्थों के अनुवाद द्वारा भी भरा जा सकता है। भारतेन्दु के संकेत सूत्र को लेकर 'हरिऔध' अनुवाद-कार्य की ओर अग्रसर हुए। इसी तरह अंग्रेज़ी जाननेवाले दूसरे हिन्दी प्रेमी भी सीधे अँग्रेज़ी से अनुवाद कर हिन्दी कथा-साहित्य का भण्डार भरने में प्रयत्नशील रहे।

अंग्रेज़ी से प्रायः अनभिज्ञ 'हरिऔध' के वर्ग के साहित्य प्रेमी शिक्षित जनों के लिए बंग्ला और उर्दू ही ऐसे दो भाषा माध्यम थे, जिनके द्वारा वे अंग्रेज़ी ग्रन्थों का अनुवाद कर सकते थे। बंग्ला और उर्दू में अंग्रेज़ी उपन्यासों का अनुवाद प्रारम्भ हो चुका था। बंग्ला में अच्छे-अच्छे सामाजिक और ऐतिहासिक मौलिक उपन्यासों की रचना तीव्र गति से जारी हो गयी थी। फलतः बहुत दिनों तक बांग्ला के उपन्यास हिन्दी पाठकों की सरल एवं रोचक किस्सागोई की भूख मिटाते रहे। 'हरिऔध' द्वारा अनुवादित **कृष्णकांत का दानपत्र**' इसी अनुवाद परम्परा की एक कड़ी है।

बंग्ला में भी गद्य-लेखन का कार्य संस्कृत के पंडितों ने ही प्रारंभ किया था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सीता वनवास की भाषा बंकिमचन्द्र की भाषा है। फलतः 'हरिऔध' ने भी अपने अनुवाद की भाषा संस्कृत गर्भित ही रखी है। जहाँ कहीं अनुवाद में ठेठ हिन्दी का प्रयोग किया गया है, वहाँ भाषा में दोष उत्पन्न हो गया। जैसे—

"गोविन्द लाल—कलकत्ता। वहाँ मैं अपने एक जन बंधु को पत्र देता हूँ। वह तुमको एक घर मोल ले देंगे। तुम्हार रुपया न लगेगा।"

रोहिणी—मेरे चचा का क्या होगा ?"

गोविन्द लाल—वह तुमारे संग जावेंगे । नहीं तो मैं तुमको कलकत्ता जाने को न कहता ।

रोहिणी—वहाँ अपना दिन कैसे बिताऊँगी ?

गोविन्द लाल—हमारे बंधु तुमारे चचा की एक नौकरी लगा देंगे ।"

इन पंक्तियों पर बांग्ला का प्रभाव स्पष्ट है । हिन्दी में 'जन' शब्द का प्रयोग एक आदमी के अर्थ में होता है । बांग्ला में 'बंधु' का अर्थ भिन्न होता है । परन्तु हिन्दी में इसका अर्थ होता है भाई । कहने की आवश्यकता नहीं कि 'हरिऔध' ने हिन्दी में उस शब्द का प्रयोग बांग्ला वाले अर्थ में ही किया है । तुमको मोल ले देंगे, 'कलकत्ते जाने को' आदि प्रयोग भी चित्य हैं । चाचा शब्द के स्थान पर 'चचा' का प्रयोग उर्दूदाँ होने के नाते किया गया है । बांग्ला से अनुवाद-कार्य में कहीं-कहीं 'हरिऔध' ने ब्रजभाषा का भी प्रयोग किया है । जैसे 'भैया चलो गयो ।' ऐसे प्रयोग केवल घरेलू वार्ता की शैली दिखाने के लिए किये गये हैं, परन्तु कविताओं के अनुवाद में ब्रजभाषा का प्रयोग इस काल में ही सामान्य प्रवृत्ति का परिचायक है । उस समय खड़ी बोली पद्य रचना के लिए अनुपयुक्त समझी जाती थी । यथा—

मने करि चाँद धरि हाते दिई पेड़े ।
बाबला गाछे हात लागे आँगुल गेलो छिड़े ।

इसलिए ऐसे पद्यों का अनुवाद इस रूप में किया —

मैं चाहत हौं चाँद को आनि धरो करि तोहि ।
उलटो काँट बबूल को, लग्यो आँगुरी मोहि ।

उर्दू से '**वेनिस का बाँका**' उपन्यास में अनुवाद के अवसर पर उर्दू ओर फ़ारसी शब्दों के स्थान पर उन्होंने संस्कृतनिष्ठ पर्यायवाची शब्दों का उपयोग किया है । इस बात का पूर्ण ध्यान रखा है कि उर्दू अथवा फ़ारसी का कोई शब्द रह न जाये । 'हरिऔध' बड़े ही समर्थ शब्दशिल्पी थे । उनका रुझान जितना तत्सम शब्दों की ओर था, उतना ही तद्भव और देशज शब्दों के प्रयोग की ओर भी ।

उर्दू की काशी पत्रिका में प्रकाशित होने वाले कुछ उर्दू निबंधों का भी उन्होंने अनुवाद किया था । इन निबंधों की भाषा भी संस्कृतगर्भित है । इन निबन्धों का इसी ध्येय से अनुवाद किया गया है कि इनमें किसी अन्य भाषा के शब्द न आने पायें । ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के '**चारु चरितावली**' नामक ग्रन्थ का भी उन्होंने इसी नाम से अनुवाद किया । अतः बांग्ला भाषा संस्कृत शब्दों पर आधारित है और अनुवाद की भाषा और ग्रन्थ की मूल भाषा में किसी विशेष प्रकार का अन्तर नहीं है ।

'हरिऔध' का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है 'फिसाना अजायब' के पद्यों का **प्रेम-प्रपंच** के नाम से ब्रजभाषा में अनुवाद । फ़ारसी के इन अशआरों का कवि ने ब्रज-

भापा के दोहों में अनुवाद किया। इसमें संदेह नहीं कि 'हरिऔध' ने फ़ारसी के अशआरों की भापा के दोहों मे मौलिक पदों की अपेक्षा अधिक सौंदर्य उत्पन्न हो गया है तथा ये मौलिक पद्य से प्रतीत होते हैं। एक उदाहरण देखें—

किसी का कब कोई रोज़े सियह में साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा रहता है इन्साँ से।

फ़ारसी के उपर्युक्त शेर का ब्रज भापा मे निम्नलिखित अनुवाद है :—

विपति परे पै देत कब, कोउ काहू को संग।
भा भौन अंधेरे तजन है परछाँही हूँ अंग॥

कवि ने शब्दानुवाद न कर भावों का ग्रहण कर उसे अपने छंद में बाँधा है। फ़ारसी के 'रोज़ेसियह' का यदि हिन्दी अनुवाद करे तो उसका अनुवाद होगा 'काला दिन। 'काला दिन' का कोई अर्थ नही होता इसलिए कवि ने उसके भाव के अनुरूप इनका "विपत परे पै' अनुवाद किया। फ़ारसी में मात्र यह कहा गया है कि अंधेरे में छाया भी मनुष्य से दूर रहती है। लेकिन 'हरिऔध' ने इसमें थोड़ा परिवर्तन किया। उन्होंने इसका भावानुवाद कर लिखा, 'अधेरे मे परछाँही भी अंगों का साथ छोड़ देती है।' इस प्रकार अनुवाद-कार्य में भी उन्होंने शब्दानुवाद के स्थान पर भावों को अधिक महत्त्व दिया और उसके अनुरूप अनुवाद कर रचनाओं को प्रभावी और रसात्मक बनाने में योग दिया।

मुक्तक रचनाएँ

द्विवेदी युग में मुक्तकों की अनेक प्रकार की शैलियों का विकास हुआ और उस काल के कवियों ने मुक्तकों में बड़ी सरस रचना की। 'हरिऔध' ने मुक्तकों के नेतृत्व का कार्य किया। अन्य कवियों से पूर्णतः स्वतंत्र रूप में उनके मुक्तकों का विकास हुआ। उन्होंने अपने मुक्तकों के लिए जहाँ नवीन भावों, नये विचारों का उपयोग किया, वहीं नवीन छंदों तथा नयी शैली का भी विकास किया। 'हरिऔध' की मुक्तक रचनाओं को भाषा की दृष्टि से हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं: 1. व्रजभाषा संबंधी मुक्तक 2. खड़ी बोली संबंधी मुक्तक और 3. बोलचाल संबंधी मुक्तक। 'हरिऔध' के व्रज भाषा संबंधी मुक्तक जीवन के प्रारंभिक काल में लिखे गये। इन्हीं मुक्तकों के माध्यम से उन्होंने हिन्दी क्षेत्र में प्रवेश किया। आकारगत दृष्टि से 'हरिऔध' ने उस समय प्रचलित मुक्तकों के सभी छन्दों का प्रयोग किया। दोहा, सोरठा, सवैया, कवित्त, बरवै और छप्पय आदि में उन्होंने रचनाएँ की। *उनकी व्रजभाषा के कुछ उदाहरण देखें :—*

बावरी ह्वै जाती बार-बार कहि वेदन को।
बिलखि बिलखि जो विहार थल रोती ना।
पीर उठे हियरो टूक-टूक होत।
ध्याइ प्राणनाथ जो कसक निज खोती ना।
प्यारे हरिऔध के पधारे परदेश दोऊ
नैन नसि जात जो सपन संग सोती ना।
तन जरि जातो जो न अँसुआँ ढरत ऊधो,
प्राण कढ़ि जातो जो प्रतीति उर होती ना।

गोपिकाएँ कृष्ण की बाँसुरी की सुरीली तान, उनकी मंद मुस्कान और उनके रास मंडल की शोभा का स्मरण कर विह्वल होकर उद्धव से कहती हैं:

कैसे मंजु बाँसुरी की सुरति बिसारि दीजै,
याद नहिं की जै कैसे वचन रसाल को।
मंद मुसकानि कैसे चित पै चढ़ैना कबों,

ध्यान छूटि जावै कैसे लटकीली चाल को।
'हरिऔध' की सौं सवै करि हौं तिहारी कही,
केवल बतैये इतो छोरि सब ख्याल को।
कैसे वह साँवरो स्वरूप हिय में ते कढ़ै
ऊधो कैसे भूलै रास मंडल गोपाल को।

हृदय की व्यथा का मार्मिक शब्दों में वर्णन देखिए :—

नही मानती है विगरी रसना सदा आपनी ही मनमानी करै,
दृग नासिका, कान की कौन कथा इनकी गति हूँ नहिं जानी परै।
'हरिऔध' जिती अब बाकी अहै तिन इंद्रिन हूँ ते कछू ना सरै
भव जाल से छूटन कोपै कबौ मनुवाँ मृग की सी छलाँगै भरै।

'हरिऔध' की ये रचनाएँ 17-18 वर्ष की अवस्था में लिखी गयी थीं। उस समय भी वे भाषा के प्रति बड़े सतर्क थे। उनके छंदों का गठन, उनके छंदों का चयन इस प्रकार का है कि इन कविताओं की तुलना व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवियों से की जा सकती है। भाषा से भी बढ़कर भावाभिव्यक्ति का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। 'हरिऔध' के कृष्ण के ईश्वर और मानव रूप में कोई अधिक अन्तर नही दीख पड़ता। 'हरिऔध' के कृष्ण मानव रूप में भी महा पुरुष की कोटि के हैं। उनके कृष्ण मानव होते हुए भी अपने गुणों की गरिमा से देवत्व की कोटि में प्रवेश करते से प्रतीत होते हैं। 'हरिऔध' के हृदय में किस प्रकार प्राचीन परम्परागत भावनाओं के प्रति क्रमशः विद्रोह उत्पन्न हो रहा था, इसका संकेत भी हमें इन रचनाओं में मिलता है।

'हरिऔध' की मुक्तक रचनाओं का क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत है। मुक्तकों के आकार तथा भावगत दृष्टि से कितने विभाजन किये जा सकते हैं, उन सबमें से कुछ को छोड़कर उन्होंने अधिकतर मुक्तकों की रचना की है। 'हरिऔध' के खड़ी बोली संबंधी मुक्तकों का विषय की दृष्टि से इस प्रकार विभाजन किया जा सकता है :—जातीय भाव संबंधी, देशोत्थान संबंधी, धार्मिक मुक्तक, पवित्र पर्व संबंधी, प्रकृति-चित्रण, मनोवृत्ति चित्रण,शिख-नख संबंधी, मांगलिक कार्य संबंधी, मानवीय सौन्दर्य संबंधी, ईश्वर संबंधी, उपदेशात्मक और बालोपयोगी।

'हरिऔध' की मुक्तक रचनाएँ उस समय की प्रतिष्ठित हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं और बड़ी लोकप्रिय थीं। खड़ी बोली के मुक्तकों का उनका पहला संग्रह '**काव्योपवन**' 1909 में प्रकाशित हुआ था। काव्योपवन के बाद पद्य प्रसून, पद्य प्रमोद, कल्पलता, बाल कवितावली, पवित्र पर्व, ग्राम गीत, मर्मस्पर्श, दिव्य दोहावली आदि उनके मुक्तक कविताओं के संग्रह हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण और विशाल ग्रन्थ है—**पारिजात,** जिसमें विविध विषयों की कविताएँ संग्रहीत हैं। पहले इसका नाम '**स्वर्गीय संगीत**' रखा गया था। चूँकि यह नाम ग्रंथ

के विषयों का पूर्ण लक्ष्य स्पष्ट नहीं कर सकता था अतः कवि ने काव्य का नाम **'पारिजात'** रखा। पारिजात नन्दनवन का कामनाओं की पूर्ति करने वाला कल्प-तरु है। यह ग्रंथ भी पाठकों की अनेक प्रकार की काव्यसंबंधी इच्छाओं की पूर्ति करता है। इसमें जीवन और जीवन से परे अनेक विषयों का मार्मिक चित्रण हुआ है। प्रत्येक सर्ग स्वतंत्र है। उनमें किसी में क्रमबद्धता नहीं है। एक-एक सर्ग अपने शीर्षक संबंधी विषयों का प्रतिपादन करते हैं। कवि ने किसी प्रकार की कथा का आश्रय नहीं लिया है। ऐसा लगता है कि पारिजात अनेक विषयों से विभूषित मुक्तक कविताओं का सर्गबद्ध काव्य है। ग्रन्थ में पन्द्रह सर्ग हैं। यथा—गेय गान, अकल्पनीय की कल्पना, दृश्य जगत्, दृश्य जात, अन्तर्गत, अन्तर्जगत्, सांसारिकता, स्वर्ग, कर्म-विपाक, प्रलय प्रपंच, कान्त कल्पना, सत्य का स्वरूप और परमानन्द।

प्रथम सर्ग में गेय गान के अंतर्गत दशावतारों के समान कवि ने भारत की दस दिव्य विभूतियों का गुणगान किया है। उनका गुणगान करने के पश्चात् भारत की संस्कृति और विभूति की अभ्यर्थना की गयी है। द्वितीय सर्ग में विभु की विभुता के संबंध में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की गयी हैं। तीसरे से लेकर छठे सर्ग तक विभु द्वारा उत्पन्न की गयी सृष्टि के दृश्य जगत् का वर्णन है। कवि ने इन सर्गों में क्रमशः आकाश, हिमाचल, समुद्र, वसुधरा तथा जड़ प्रकृति के नाना तत्त्वों का विस्तृत वर्णन किया है। सातवें और आठवें सर्ग में विभु (पुरुष) और प्रकृति के योग से उत्पन्न मानव के अंतर्जगत् का वर्णन है। नवें सर्ग में जड प्रकृति अथवा दृश्य जगत् और अंतर्जगत् के संघर्षों से उत्पन्न सांसारिकता या मानव की सांसारिक मनो-वृत्तियों का चित्रण है। सांसारिक जीवन के कारण मानव स्वर्ग, कर्म, विपाक, प्रलय, प्रपंच और अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करता है। उपयुक्त विषयों का वर्णन क्रमशः दसवें, ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवे सर्ग में किया गया है। स्वर्ग, नरक, कर्म-विपाक, प्रलय आदि की मीमांसा करते हुए मानव सत्य का स्वरूप समझने का यत्न करता है। यदि वह सत्य का स्वरूप समझने में सफल हो गया तो उसे जीवन का अंतिम अथवा परमलक्ष्य परमानन्द प्राप्त हो जाता है।

'पारिजात' में 'हरिऔध' की विभिन्न काव्य शैलियों का अद्‌भुत संगम है। इस ग्रंथ में उनकी विभिन्न शैलियाँ आकर एकत्र हो जाती हैं और सब शैलियों के उदाहरण मिलते हैं।

'हरिऔध' ने अपनी तथा समाज की मनोवृत्तियों और भावनाओं के सुन्दर चित्रों का अंकन इन मुक्तकों में किया है। हृदय का हर्ष, मनोव्यथा, करुणा आदि के सुन्दर चित्र मिलते है। दुःख से दुखी होकर जब किसी की आँख से आँसू निकल पड़ते है तो उसको देखकर कवि की मार्मिक उक्तियाँ यह कहती हैं,

आँख का आँसू ढलकता देखकर,
जी तड़प कर के हमारा रह गया।

क्या गया मोती किसी का है बिखर,
या हुआ पैदा रतन कोई नया !
ओस की बूँदें कमल से हैं कढ़ीं।
या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ।
या अनूठी गोलियाँ चाँदी मढ़ी
खेलती हैं खंजनों की लड़कियाँ।

सृष्टि का नियामक कौन है ? किसके द्वारा यह विशाल रचना हुई, कौन सृष्टि का संचालन करता है ? इस संबंध में तथा इस रहस्य को समझने की जिज्ञासा अनेक रूपों में कवि व्यक्त करते रहे हैं। रहस्यवादी कवि भी नियामक के उस रूप का उद्घाटन करने के लिए रहस्यात्मक कविता करते रहे हैं। 'हरिऔध' ने भी इस प्रकार की उत्कट जिज्ञासा व्यक्त की और इस रहस्य को जानने की उत्सुकता उनमें भी दीख पड़ती है—

सेमल को लाल सुमन मिले हैं कहाँ,
पीले पीले पुष्प दिये किसने बबूलों को।
तूली तूलिकाएँ ले ले कैसे साजता है कौन,
सुललित लतिका के कलित दुकूलों को।
'हरिऔध' किसके खिलाये कलियाँ हैं खिली,
दे दे दान मंजुल मरंद अनुकूलों को।
किससे रंगीली साड़ियाँ है तितली को मिली,
कौन रंगरेज रँगता है इन फूलों को।

'हरिऔध' के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है, विविधता। उन्होंने अनेक शैलियों और अनेक भाषा रूपों का प्रयोग किया है। प्रारंभ मे हिन्दी छन्दों और शुद्ध हिन्दी का प्रयोग उन्होंने किया। इन मुक्तकों के बाद भिन्न प्रकार और शैली के मुक्तक लेकर हिन्दी साहित्य के सम्मुख आये। बोल चाल की भाषा में तथा मुहावरों से युक्त भावों को लेकर उन्होंने इन मुक्तकों की रचना की, उन्हे इस प्रकार की चुनौती कहाँ से मिली और वे क्यों उस ओर मुड़े—यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। मौलाना शिवली नोमानी उर्दू और फ़ारसी के प्रसिद्ध विद्वान थे। उनका बड़ा प्रभाव था। हरिऔध मौलाना साहब के समकालीन थे। कभी-कभी दोनों लेखकों मे मुठभेड़ हो जाया करती थी और मौलाना साहब 'भाखा' की खिल्ली उड़ाया करते थे। वे स्पष्ट शब्दों में कहते कि, "वह ज़ुबान क्या, जिसमें मुहाविरे-दानी नहीं। हिन्दी भला क्या उर्दू का मुकाबला करेगी। हिन्दी तो जानती ही नहीं कि मुहाविरा किस चिड़िया का नाम है ?" हरिऔध जी इन आलोचनाओं मे बड़े दुखी होते। पर बात तो सच थी ही। उनके मन में यह बात बैठ गयी कि हिन्दी के इस अभाव की पूर्ति करना नितान्त आवश्यक है। उन्होंने उर्दू के अशआरों के जोड़

के मुक्तक लिखने का ही संकल्प किया था क्योंकि इस प्रकार के मुक्तकों में ही मुहावरों के नगीने ठीक से जड़ाये जा सकते थे। इसलिए उन्होंने बोलचाल की मुहावरेदार भाषा में मुक्तकों की रचना की।

हरिऔध की अधिकतर उत्तरकालीन मुक्तक रचनाएँ चौपदों में ही लिखी गयी हैं। उनका **'चुभते चौपदे'**, **'बोलचाल'**, **'फूल पत्ते,'** **'आधुनिक कवि'** तथा पारिजात का कुछ अंश बोलचाल की भाषा में लिखा गया है। जहाँ **चुभते चौपदे** और **'चोखे चौपदों'** में सामायिक विषयों पर कविताएँ हैं, वहीं बोलचाल तो शिख नख से संबंध रखनेवाले मुहावरों का एक विशाल कोश है। बोल-चाल के मुक्तकों में उर्दू बह्रों (छन्दों) का उपयोग किया गया है।

हम अपनी ओर आँख उठाकर नहीं देखते। दूसरों का दोष देखने को सदा तैयार रहते हैं। अपने दोष के प्रति तो हम अपनी आँख मूँद लेते हैं, यह ठीक नहीं है—

और की खोट देखती बेला,
टकटकी लोग बाँध देते हैं।
पर कसर देखते समय अपनी,
बेतरह आँख मूँद लेते हैं।

कवि कहता है, मनुष्य को गंभीरता छोड़कर हल्कापन नहीं दिखलाना चाहिए। गंभीरता ही मनुष्य की शोभा है और विनम्रता ही मनुष्य को आगे बढ़ाती है—

तुम न भारीपन गँवा हल्के बनो,
मत किसी को प्यार करने से रुको,
है अकड़ते पाँव तो अकड़े रहें
पर सभी के सामने सिर तुम झुको।

मुहावरे युक्त बोलचाल की भाषा का जो उदाहरण 'हरिऔध' ने अपनी कविताओं द्वारा प्रस्तुत किया, वह उपयुक्त समय से बहुत पहले ही हिन्दी-संसार के सम्मुख रखा गया। अतः उस समय जैसा उसका स्वागत होना चाहिए था, नहीं हुआ। लेकिन वर्तमान समय में जब अब हिन्दी राष्ट्रभाषा हो गयी है, तब सब लोग अनुभव करते हैं कि भाषा का रूप कुछ ऐसा होना चाहिए जिसका जनता से पूर्ण सम्पर्क बना रहे। आज हिन्दी कविता में उर्दू शब्दों और उर्दू छंदों का प्रयोग भी बहुलता से होने लगा है। इस समय हिन्दी क्षेत्र में दो पृथक् धाराएँ दीख पड़ती है। एक धारा उन कवियों की है, जो अपनी कविताओं में संस्कृतगर्भित भाषा का प्रयोग करते हैं। दूसरी धारा उन कवियों की है, जो अपनी कविताओं में अन्य भाषाओं के शब्दों का स्वतंत्रता पूर्वक उपयोग कर रहे हैं। 'हरिऔध' ने इन दोनों धाराओं के बीच का मार्ग 'बोल चाल' की भाषा के लिए निश्चित किया और उनका विचार था कि जनता तक पहुँच सकने के लिए

तथा जन-साहित्य के निर्माण के लिए मुहावरों से युक्त बोलचाल की भाषा ही काव्य के उपयुक्त हो सकती है।

रस कलस

'रस कलस' का अधिकांश अंश उस समय का है, जब 'हरिऔध' व्रज भाषा के कवि थे और उसी के माध्यम से अपनी काव्यात्मक अनुभूतियों को व्यक्त कर रहे थे। **रस कलस** की भूमिका तो उस समय लिखी गयी, जब ग्रंथ का प्रकाशन हुआ। साथ ही नयी, नायिकाओं की उद्भावना का भी वही समय है। शृंगार अथवा किसी रस के उदाहरणों को प्रस्तुत करने के समय भी। उन्होंने अपनी कल्पना की बागडोर को हाथ से छूटने नही दिया। विशेष कर शृंगार रस के छंदों के संबंध में यह बात और भी अधिक लागू होती है। नायिकाओं और उनके भेद-उपभेदों के संबध में भी जब वे विवेचन करते हैं, उस समय भी मर्यादा की भावना की उन्हें चेतना बनी रही। इसका प्रधान कारण परिवार का संस्कार तथा व्यक्ति-गत जीवन की शुद्धता है। शृंगार-रस का वर्णन करते समय भी उन्होंने अपने समाज और अपने समय की विचारधारा का पूरा ध्यान रखा। उनके इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने नौ रसों का समान रूप से तथा विस्तार के साथ वर्णन किया है एवं सबके उदाहरण स्वतः प्रस्तुत किये है।

रस कलस के संबंध में प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं—"आजकल हिन्दी के जिन लब्धप्रतिष्ठ पुराने कवियों को हम काव्य के आधुनिक मार्ग पर पाते हैं। उनमे से कई पुरानी परिपाटी पर अत्यत रसमयी रचना कर चुके है। ऐसे कवियो मे आधुनिक काव्य क्षेत्र के महारथी 'हरिऔध' जी प्रमुख हैं। लोग खड़ी बोली के कई रूपों की झलक दिखलाने वाले उनके उन प्रौढ़ सरस और मधुसिक्त काव्यों से तो परिचित थे ही; जिन्होंने खड़ी बोली के गौरवपूर्ण भविष्य को स्थिर किया है, **रस कलस** द्वारा उनकी व्रज भाषा की माधुरी भी लोगों को सुलभ हो गयी। 'हरिऔध' जी शब्दों के कितने बड़े धनी हैं—यह उनके **प्रिय प्रवास** आदि काव्यों का अनुशीलन करनेवाले जानते ही हैं। खड़ी बोली में जब उनकी कोमल कान्त पदावली इतनी मिठास घोल देती है तब स्वभावतः कोमल और मधुर व्रज भाषा के बीच उसकी छटा का क्या कहना? '**रस कलस**' में हरिऔध जी ने काव्य की प्रतिष्ठित परम्परा को चरम उत्कर्ष पर पहुँचाकर छोड़ दिया है।"

इस बीसवीं शती में भी प्राचीन परम्परा का ध्यान रखकर और नवीन विचारों का समावेश कर 'हरिऔध' ने शृंगार रस के काव्य रीति ग्रंथ का निर्माण किया। इस ग्रथ का अनेक दृष्टियों से महत्त्व है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह सिद्धान्त-ग्रंथ शृंगार रस के संबंध में भी एक नया दृष्टिकोण उपस्थित करता है।

हरिऔध ने इस ग्रंथ के द्वारा ब्रज भाषा के आचार्यों की परम्परा में अपना महत्त्व-पूर्ण स्थान बना लिया। उनका यह **'रस कलस'** ब्रज भाषा काव्य की रीति परम्परा का संभवत: अन्तिम प्रमुख और प्रामाणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ में उन्होंने ब्रज भाषा काव्य की रीति का विस्तार से विवेचन किया है। परन्तु सिद्धान्तों की दृष्टि मे उनकी कुछ अपनी मौलिक उद्भावनाएँ भी है। 'हरिऔध' नवीन प्रयोगों के विश्वासी और सिद्धान्तों पर आधारित भाषा और कविता के नियामक रहे हैं। यदि उन्होंने काव्य कला पक्ष की ओर ध्यान दिया है, उसमें नयी सूझबूझ का परि-चय दिया है तो भाव पक्ष की दृष्टि से भी उन्होंने मौलिक उद्भावनाएँ की हैं।

पहले यह बात स्पष्ट कर देनी है कि हिन्दी साहित्य के कुछ विद्वान यह सम-झते हैं कि कलात्मक कविता में बुद्धितत्त्व ही प्रधान होता है। वह एक प्रकार से मस्तिष्क का व्यायाम है। भाव अथवा हृदय पक्ष से उसका कोई संबंध नहीं। 'हरिऔध' ने स्पष्ट रूप से इस मत का खण्डन किया है। वे कहते है—"कला में हृदय की भावुकता ही नहीं होती, उसमें मास्तिष्क का कार्य कलाप भी होता है। दोनों के साहचर्य से ही कला को पूर्णता प्राप्त होती है।" नायिका-भेद की कविता में यथास्थान दोनों का समुचित विकास देखा जाता है। इसलिए उसकी कविताएँ कला की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि की पायी जाती हैं।

'रस कलस' में काव्य की रीति का विशद रूप मे विवेचन हुआ है। रस की परिभाषा, रस के साधन, रस की उत्पत्ति, रसास्वादन के प्रकार, रस का इतिहास रस की आनन्द रूपता, रस और ब्रह्म स्वाद के संबंध मे जो भी शास्त्रीय मत हैं, जिस प्रकार की संस्कृत के आचार्यो ने व्याख्याएँ की है, उसी रूप में हरिऔध ने उन्हें स्वीकार किया है। यह अवश्य है कि जहाँ प्राचीन आचार्यो ने सूक्ष्मरूप मे इनका निर्देश किया है, वहाँ उन्होंने उनकी पूर्ण रूप से व्याख्या की है और उनके विचारों का विशद व्याख्या द्वारा समर्थन किया है। एक उदाहरण देखें—"ब्रह्म स्वाद अर्थात मुक्ति की दशा में ब्रह्म मात्र ही प्रकाशित रहता है और भावों का तिरोभाव हो जाता है। उस समय भी केवल रस विकसित रहता है और सब उसी में लीन हो जाते हैं। कहा भी है—'अन्यत्र सर्वमिव तिरोधात्' इसलिए वह ब्रह्म स्वाद सहोदर है अथवा ब्रह्म स्वाद से उसकी समानता है।"

नायिका भेद की ही बात ले ली जाय। संस्कृत साहित्य में समाज को सुग-ठित और सुसंगठित रखने तथा समाज गुण, धर्म शील, आचार-विचार के अनुसार पारिवारिक जीवन को संघटित रखने की दृष्टि से ही विभिन्न नायक-नायिकाओं, उनके भेद, उपभेदों की कल्पना की गयी है। ये वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक तथा शरीर विज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिद्धान्तो की कसौटी पर कसे जाने पर भी खरे उतरेंगे। इन भिन्न प्रकार की नायिकाओं के वर्णन का लक्ष्य संभवत: यही था कि विवाह के पवित्र बंधन के पूर्व पुरुष और नारी एक दूसरे के गुणों से भली भाँति परिचित

हो जायें। संबंध में इस प्रकार की विषमता न हो कि समाज विघटित हो जाय अथवा समाज में असंतोष, कलह, घृणा की भावना फले। नायिका भेद के वर्णन की यही उपयोगिता है, यही लक्ष्य है। इसका विवेचन करते हुए 'हरिऔध' कहते हैं—

"संसार-सुख-शान्ति गाड़ी के दो पहिये है, एक पुरुष और दूसरा स्त्री। यदि ये दोनों पहिये ठीक-ठीक काम देते हैं तो सुख शांति की गाड़ी यथारीति चलती रहती है और जीवन आनन्दमय बना रहता है अन्यथा जिस परिमाण में पहियों में दोष आता है उसी परिमाण में सुख-शांति की गाड़ी की गति बिगड़ती और अनेक अवस्थाओं में नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। जब तक पुरुष को स्त्री के हृदय और उसके मनोभावों का यथातथ्य ज्ञान नहीं होता और जब तक स्त्री पुरुष के स्वभाव से पूर्णतया परिचित नहीं होती, उस समय तक संसार यात्रा का यथोचित निर्वाह नहीं होता। जब तक दोनों एक दूसरे के गुण-दोष नहीं जानते, प्रवृत्ति को नहीं पहचानते, तब तक वे नहीं समझ सकते कि संसार सुमनमय ही नहीं है, उसमें काँटे भी हैं तब तक न तो वे अपने जीवन को सफल बना सकते हैं और न आये दिन की आपदाओं से बच सकते हैं।"

शृंगार रस का दुरुपयोग भी हुआ। संस्कृत के कुछ कवियों ने और ब्रजभाषा के तो अनेक कवियों ने श्लीलता और अश्लीलता का कुछ भी ध्यान नहीं रखा। वे ऐसे वर्णनों में लिप्त हुए जो समाज के लिए वांछनीय नहीं कहे जा सकते। नायिका भेद का वर्णन करने वाले ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने भगवान कृष्ण और राधा का इस प्रकार चित्रण किया कि समाज में उनकी तस्वीर ही बदल गयी। वे साधारण विलासी, लम्पट मनुष्य के रूप में चित्रित किये जाने लगे। उनके संबंध में जो पूज्य भाव थे, वे समाप्त होने लगे। 'हरिऔध' की मान्यता है कि सत् उद्देश्यों से वर्णित शृंगार रस, नायिका भेद अथवा शिख-नख मनोविकार ग्रस्त नहीं होता। हरिऔध ने रस कलस की रचना सत् पथ दिखाने के लिए की। वे यह चाहते थे कि ब्रजभाषा की जो निंदा हो रही है, नायिका भेद के वर्णनों को सुनकर जो नाक-भौं सिकोड़ी जा रही है, उन्हें उसका वास्तविक रूप समझाया जाये। समय, देश की स्थिति तथा समाज के लिए किन बातों की आवश्यकता है, इस बात से वे अपरिचित न थे। उसे वे भली-भाँति समझते थे, परन्तु उनकी यह भी धारणा थी कि समाज में अथवा साहित्य में यदि कोई अंश दूषित हो गया है तो केवल दूषित अंश के लिए संम्पूर्ण क्षेत्र का बहिष्कार न किया जाये। ऐसे उदाहरण रखे जायें, ऐसी रचनाएँ की जायें कि दोष का परिमार्जन हो और समाज तथा साहित्य के सामने एक स्वस्थ परम्परा का पुनः विकास हो।

'हरिऔध' के **रस कलस** की एक और विशेषता भी है। पहले उन्होंने प्रत्येक विषय का विवेचन गद्य में किया है। इसके बाद उन सिद्धान्तों के प्रतिपादन के

लिए स्वरचित सरस उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। 'हरिऔध' आचार्य से पहले सफल कवि थे। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने उदाहरणों के लिए जो अंश प्रस्तुत किये हैं, वे बड़े ही सरस और प्रभावकारी हैं। इस दृष्टि से यह ग्रंथ और भी महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान है। 'हरिऔध' द्वारा निरूपित स्वकीया नायिका के अंतर्गत मध्याधीरा नायिका का विवेचन देखिये—

भोर भये पै पधारे, कहा भयौ, मेरी सदा सुख ही की घरी है।
ऐरी कहू 'हरिऔध' करै, हमें तो उनकी परतीत खरी है।
बूझ विचार कहै किन बावरी बीचई में कत जाति मरी है।
साँवरे प्रेम पसीज परी नहिं मो आखियाँ अँसुआन भरी है।

प्रकृति के अनुसार उत्तमा के अंतर्गत हरिऔध ने कुछ नवीन नायिकाओं की भी उद्भावनाएँ की हैं। इनमें जाति-प्रेमिका, जन्म भूमि प्रेमिका और लोक सेविका प्रमुख है। जन्म भूमि प्रेमिका का एक उदाहरण देखें—

चकित बनत हेरि उच्चता हिमाचल की,
चाहि कनका चल की चारुता चरमता।
मुदित करत निधि मानता है नीरदि की,
मानस-मनोहरता सुर पुर की समता।
हरिऔध मोहकता हेरि मोंहि मोंहि जाति,
जनता अमायिकता मैं है मन रमता।
महनीय महिमा निहारि महती है होति,
ममतामयी की मातृ मेदिनी की ममता।

'रस कलस' की लम्बी गंभीर और पांडित्य पूर्ण भूमिका इस बात का प्रमाण है कि हरिऔध ने इन विषयों का कितनी गहराई और सहानुभूति के साथ अध्ययन किया है। उनके स्वभाव की यह विशेषता रही है कि वे सच्चे कवि के समान सत्य का सतत् अन्वेषण करते हैं और सत्य के साक्षात्कार द्वारा शिव और सुन्दर की स्थापना की कल्पना करते रहे हैं। उनकी सफलता का यह एक महत्त्वपूर्ण रहस्य है जिस विषय पर भी उन्होंने चिन्तन किया—उस पर उदारता, सहानुभूति और निष्पक्ष भाव के साथ ही विचार किया है। उन्होंने अपना सिद्धान्त भी प्रस्ताव के रूप में ही समाज के सामने रखा है। यह भी आचार्योचित विनम्रता का लक्षण है।

खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्यकार

हिन्दी साहित्य खड़ी बोली काव्यधारा के विकास को लगभग अर्धशती से अधिक समय व्यतीत हो चुका परन्तु खड़ी बोली के क्षेत्र में अभी तक कोई ऐसा चिंतक और आचार्य नहीं हुआ, जो खड़ी बोली के महाकाव्यों के लक्षणों की स्थापना का प्रयत्न करता। खड़ी बोली के काव्यों का मानदण्ड भी संस्कृत के लक्षण ग्रंथ ही हैं। युग के परिवर्तन का काव्य के प्रणयन पर कितना प्रभाव पड़ा है, इस पर विचार न कर, आज का आलोचक चौदहवीं शती में निश्चित किये गये महाकाव्य के लक्षणों की कसौटी पर आज के युग के महाकाव्यों की परीक्षा करता है। यह खड़ी बोली के अपने आदर्शों की रंकता ही है। खड़ी बोली के क्षेत्र में लोगों ने विस्तृत प्रबन्ध काव्य की रचना की, परन्तु जहाँ तक भाषा, छन्द और शैली का प्रश्न था, वे भी संस्कृत की परम्परा से अपने को पृथक् न कर सके। संस्कृत वृत्तों में उनके पूर्व अनेक संस्कृत महाकाव्यों की रचना हो चुकी थी, अतः संस्कृत में प्रबंध काव्य लिखना कुछ दृष्टियों से उनके लिए सरल था। भाषा भी उनकी अधिकतर संस्कृतनिष्ठ ही रही। हरिऔध महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति थे। हिन्दी खड़ी बोली में प्रबंध काव्य के अभाव की पूर्ति की दृष्टि से ही वे पहला प्रबन्ध काव्य लेकर साहित्यिकों के सम्मुख उपस्थित हुए। उन्होंने '**प्रिय प्रवास**' की भूमिका में अपने विचार को व्यक्त करते हुए स्पष्ट रूप से लिखा है—"खड़ी बोली में छोटे-छोटे कई काव्य ग्रंथ अब तक लिपिबद्ध हुए हैं, परन्तु उनमें अधिकांश सौ, दो सौ पदों में ही समाप्त हैं। जो कुछ बड़े हैं वे अनुवादित हैं, मौलिक नहीं। इसके अतिरिक्त ये समस्त ग्रंथ अन्त्यानुप्रास विभूषित हैं, इसलिए खड़ी बोली में मुझको एक ऐसे ग्रंथ की आवश्यकता दीख पड़ी, जो महाकाव्य हो और ऐसी कविता में लिखा गया हो, जिसे भिन्न तुकान्त कहते हैं। अतएव मैं इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कुछ साहस के साथ अग्रसर हुआ और अनवरत परिश्रम कर इस 'प्रिय प्रवास' नामक ग्रंथ की रचना की।"

हरिऔध ने काव्यरीति का गहन अध्ययन किया था। उनकी भी दृष्टि अपने पूर्ववर्ती संस्कृत के महान आचार्यों के समान उदार थी। वे महाकाव्यों को केवल

नियमों और लक्षणों के शुष्क बंधनों में जकड़ने के पक्ष में न थे। उनकी दृष्टि लोक-रंजन और राष्ट्र में जीवन शक्ति संचार करने की ओर अधिक थी अतः उन्होंने अपने महाकाव्य में इन तत्त्वों पर ही विशेष रूप से ध्यान दिया। उनके सामने आचार्य दण्डी का आदर्श था, जिसने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की थी कि "महा-काव्य में यदि प्रबंधता है, उसमें विभिन्न तत्त्व सुसंबद्ध हैं और उनसे रसिकों का रंजन होता है और उनमें कुछ तत्त्वों का अभाव है तो भी वह काव्य महाकाव्य है।" इस उदार दृष्टिकोण से ही हरिऔध ने काव्यरीति के अनुशासन का भी अनेक दृष्टियों से सफलतापूर्वक पालन किया है। प्रयोग की प्रबल प्रवृत्ति होने के कारण वे कभी अपने को बंधन में बँधा रखना स्वीकार नहीं कर सकते थे। फिर कवि तो काव्य निर्माण को ही अपना उद्देश्य समझता है। महाकवि अपनी प्रतिभा, महान क्षमता और अनुभूति के योग से महाकाव्यों की रचना करता है और आचार्य उन काव्यों के आधार पर अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन करते हैं। यह परम्परा पहले से चली आ रही है। यदि खड़ी बोली काव्यरीति की अपनी परम्परा होती तो आचार्यगण '**प्रिय प्रवास**', **वैदेही वनवास**' और '**साकेत**' आदि के आधार पर अपने लक्षणों का निर्माण करते।

'हरिऔध' ने जिस युग में अपने महाकाव्यों की रचना की, वह युग महाकाव्यों के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता। आलोचकों का विचार है कि वह युग मुक्तकों का युग था, यहाँ तक कि कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी मुक्तक काव्य की प्रधानता की बात को लाक्षणिक रीति से व्यक्त किया है—"मैंने एक महाकाव्य का अर्घ्य देवी सरस्वती के चरणों पर चढ़ाना चाहा था, पर देवी ने मेरे उपहार को ठुकरा दिया। देवी के चरणों के आघात से मेरा महाकाव्य टूटकर अलग-अलग गीतों में बिखर गया।" ऐसी परिस्थिति में युग प्रवाह के विरुद्ध काव्य क्षेत्र में कार्य करना और भी अधिक कठिन होता है। युग के प्रवाह से अपने को पूरी तरह पृथक् रखकर 'हरिऔध' ने एक नहीं, दो-दो महाकाव्यों की रचना की और उनके द्वारा खड़ी बोली काव्यरीति का एक नया आदर्श स्थापित किया।

'**प्रिय प्रवास**' की कथा पौराणिक आधार पर लिखी गयी है और कथा का मूल स्रोत है, श्रीमद्भागवत् के दशम स्कंध का पूर्वार्द्ध। 'हरिऔध' ने कथा का सूक्ष्म अंश ही ग्रहण किया है। '**प्रिय प्रवास**' का कथानक अक्रूर व्रज की भूमि पर पैर रखते हैं और उधर गोधूलि बेला में श्रीकृष्ण गोपों के साथ गायों को चरा-कर अपने गृह की ओर लौट रहे हैं। कृष्ण के गोकुल में आते ही समस्त जनता उत्सुक होकर उनके रूप रस का पान करने लगती है। श्रीमद्भागवत और '**प्रिय प्रवास**' के कृष्ण में बहुत अन्तर है। भागवत् द्वारा वर्णित कृष्ण बालक नहीं हैं। वे असाधारण क्षमतावान व्यक्ति हैं और जगत्पति के रूप में विख्यात हैं। लेकिन '**प्रिय प्रवास**' के कृष्ण बालक हैं। श्रीमद्भागवत की कथा में थोड़ा हेर फेर कर

देने से कवि को मार्मिक स्थलों का हृदयस्पर्शी वर्णन करने का अवसर मिल गया है। उदाहरणार्थ '**प्रिय प्रवास**' में जब अक्रूर ब्रज में आये, तब कृष्ण को इसका कुछ भी ज्ञान न था। यह थोड़ा-सा परिवर्तन कर देने से कवि को पुत्र के दुःख की आशंका से माता के हृदय में क्या मानसिक संघर्ष आरम्भ होता है, इसका चित्रण करने का अवसर मिल गया। इसी प्रकार उद्धव ने ब्रज की भूमि में कब पैर रखा, यह किसी को ज्ञात नहीं था। प्रातःकाल नन्द के द्वार पर सब लोगों ने रथ को खड़ा देखा, तब उन्हें उसकी सूचना मिली कि कृष्ण सखा उद्धव आये हैं। 'हरिऔध' ने इस कथा में थोड़ा परिवर्तन कर दिया। गोपाल अपनी गायों को चरा रहे हैं। उद्धव का यान तीव्र गति से आ रहा है।

उनके रथ को मार्ग में आते देखकर वे समझते हैं कि कृष्ण मथुरा से आ रहे हैं। यहाँ तक कि गायें भी कृष्ण का आगमन समझकर रथ की ओर दौड़ पड़ती हैं —

अतीव उत्कंठित ग्वालबाल हो,
सवेग जाते रथ के समीप थे।
परंतु होते अति ही मलीन थे,
न देखते थे जब वे मुकुंद को।

अनेक गायें तृण त्याग दौड़तीं,
सवत्स जातीं वर-यान पास थीं।
परंतु पाती जब थीं न श्याम को,
विषादिता हो पड़ती नितांत थीं।

नवीन उद्भावनाओं और साधारण घटनाओं को कल्पना की तूलिका से मर्मस्पर्शी बना देना ही, महाकवि के कर्म की सफलता का प्रमाण है। 'हरिऔध' ने **श्रीमद्भागवत** की साधारण घटनाओं को अपनी प्रतिभा तथा कवि कल्पना की सहायता से किस प्रकार सजीव बना दिया है और उसके द्वारा किस प्रकार रसात्मकता की अनुभूति करायी है, यही महत्त्व की बात है।

'**प्रिय प्रवास**' की कथा दिवसावसान से प्रारंभ होती है। कृष्ण गोप मण्डली के साथ गृह की ओर चल पड़ते हैं। उनकी मुरली की ध्वनि सुनकर ब्रज के लोग उनके समीप आ जाते हैं। ब्रज का जीवन अत्यंत आनन्दमय है। दो घड़ी रात बीत चुकने पर एकाएक विघोषक यह सूचना देता है कि ब्रज नरेश को धनुष यज्ञ देखने के लिए कंस ने पुत्रों सहित निमंत्रित किया है। घोषणा सुनते ही ब्रज के लोग स्तब्ध रह जाते हैं। भावी दुख की आशंका से वे दुखी हो उठते हैं। ब्रज-निवासी कृष्ण का गुणगान करते हैं और इसी प्रसंग में पूतना वध तथा तृणावर्त की कथा के साथ अनेक असुरों के नामों का उल्लेख होता है। कृष्ण के मथुरा-गमन का समाचार सुनकर प्रलय की-सी स्तब्धता छा जाती है। रात की भयंकरता हृदयविदारक हो उठती है। ब्रजवासियों और माता यशोदा की हृदय-वेदना के

मर्मस्पर्शी चित्र सम्मुख आते हैं। राधा के वेश का परिचय देते हुए कवि उनकी सुन्दरता और कृष्ण के साथ उनकी घनिष्टता का वर्णन करता है। राधा भी कृष्ण के मथुरागमन का समाचार सुनकर बड़ी दुखी होती है। उनकी चित्तवृत्ति का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। रात बीतने पर प्रातःकाल ब्रज की विचित्र दशा का चित्र सामने आता है। सम्पूर्ण ब्रज के लोग शोकमग्न होकर नन्द के गृह के समीप एकत्र हो रहे है। जनता की वेदना उमड़ पड़ती है। कृष्ण को जाने के लिए तैयार देखकर एक बूढ़ा आभीर और एक बूढ़ी बिलख-बिलखकर अपने हृदय के भाव व्यक्त करते हैं। आज माता यशोदा का तो रोम-रोम रो रहा है। उनकी दशा अकथनीय है।

कृष्ण को मथुरा गये कई दिन बीत चुके हैं। ब्रज के लोग बड़ी उत्कंठा मे उनके लौटने की बाट जोह रहे हैं। यशोदा माता की आतुरता तो देखते ही बनती है। वे कृष्ण के वियोग में पागल-सी हो गयी है। राधा का अत्यंत संयत वियोगिनी रूप सामने आता है। वे पवन दूती से अपने प्रिय के पास सदेश पहुँचाने की प्रार्थना करती हैं। वह दिन भी आ गया, जब नन्द कृष्ण को छोड़कर ब्रज लौट आये। उनके अकेले आने से माता यशोदा का हृदय दो टूक हो गया। उनका हृदय हाहाकार कर उठा। वह विलाप करते-करते संज्ञाशून्य हो जाती हैं। उनके विलाप से पत्थर का दिल भी द्रवित हो जाता है।

धीरे-धीरे यह रहस्य खुलता है कि कृष्ण मथुरा क्यों गये ? ग्वाल-बाल टोलियों में बैठकर उनका गुणगान करते हैं। गोप-गोपिकाएँ कृष्ण की नाना लीलाओं का वर्णन कर रस विभोर होते हैं। चारों ओर यह भी समाचार धीरे-धीरे फैल जाता है कि कृष्ण वसुदेव और देवकी के पुत्र हैं। मथुरा में कार्य की अधिकता के कारण व्यस्त रहने पर भी कृष्ण ब्रज की स्मृति से दुखी हो उठते हैं। एक दिन यह वेदना असह्य हो उठती है। फिर उन्होंने अपने मित्र उद्धव से सभी बातें कहीं और उनसे निवेदन किया कि वे जाकर दुखी ब्रज धरा को अपने ज्ञानाम्बु से सिक्त करें और माता यशोदा को सांत्वना दें। उद्धव की यात्रा का कवि ने बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। ब्रज पहुँचकर उद्धव खिन्न मन नन्द के पास बैठे है। माता यशोदा भी अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में उनके पास बैठी हैं। वे कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन करती हैं और विकल होकर उद्धव से पूछती हैं कि क्या श्याम को अपने बूढ़े माता-पिता का स्मरण नही आता ! उद्धव से वे अपनी पीड़ा का बड़े ही मार्मिक शब्दों में कथन करती हैं।

उद्धव माता यशोदा को धैर्य देकर गोप मंडली को सांत्वना देने को आगे बढ़ते हैं। गोप कृष्ण की अनेक लीलाएँ उन्हें सुनाते हैं और ब्रज धरा के दुर्भाग्य पर रोते है। परन्तु एक गोप यह भी कहता है कि कृष्ण जहाँ भी रहें, सुखी रहें, यही हमारी कामना है। गोप के गुण-कथन के बाद आभीरों के दल ने उद्धव को कृष्ण का

सुयश सुनाना प्रारम्भ किया। कृष्ण के लोक रंजन और लोक कल्याणकारी रूप का विस्तार से वर्णन किया गया है। कृष्ण के समाजसेवी रूप का चित्रण करते हुए असुरों के वध की कथाओं का वर्णन हुआ है। गोपिकाएँ अपने हृदय की वेदना का वर्णन करते हुए शरद ज्योत्स्ना के अवसर पर रात का वर्णन करती हैं और उद्धव से प्रार्थना करती है कि आप जाकर कृष्ण को ले आयें और ब्रज को सर्वनाश से बचा लें।

इसके बाद उद्धव राधा के निवास पर जाते है। उद्धव राधा को कृष्ण का सदेश सुनाते है। राधा बड़े ही शांत भाव से उद्धव की बातें सुनती है। वे बड़े ही विनम्र और संयत भाव मे अपने अलौकिक-प्रेम की भावना व्यक्त करती हैं। उद्धव उनकी भावना से बड़े प्रभावित हुए। छः मास तक ब्रज में रहने के बाद उद्धव प्रेम विभोर होकर मथुरा लौटते है। इस बीच सत्रह बार जरासंध का मथुरा पर आक्रमण हो चुका होता है। अट्ठारहवीं बार के आक्रमण मे कृष्ण को मथुरा छोड़कर द्वारिका चला जाना पड़ता है। इसके बाद राधा के परम विदुषी रूप का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि उनका सम्पूर्ण जीवन दीन-दुखियों के लिए ही समर्पित हो गया।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण के चित्रण से प्रोत्साहन पाकर बाद के कवियों ने कृष्ण के शृंगारिक रूप तथा उनके महारास के माध्यम से ऐश्वर्य और विलासिता-पूर्ण जीवन का चित्रण प्रारंभ किया। इसी पक्ष को लेकर हिन्दी साहित्य के शृंगारिक कवि दो कदम आगे बढ़ गये और विलासिता के पंक में उन्होंने उनकी भयंकर दुर्गति की। कृष्ण-रूप और व्यक्तित्व वर्णन की यह परम्परा भारतेन्दु तक चली आयी। इसके बाद भी कुछ इस प्रकार के चित्रण मिलते है परन्तु इन चित्रणों में समय और विचार धारा के परिवर्तन का भी संकेत मिलता है। इस संकेत का पूर्ण विकसित मूर्त रूप '**प्रिय प्रवास**' में अंकित हुआ। '**प्रिय प्रवास**' के कृष्ण न तो भागवत के, न महाभारत के और न ही सूरदास के कृष्ण है। उनका पूर्णतः मौलिक और क्रांतिकारी चित्र 'प्रिय प्रवास' मे अंकित हुआ है। यह 'हरिऔध' की मौलिक उद्भावना और विचार शैली की नूतनता का प्रमाण है।

'हरिऔध' ने '**प्रिय प्रवास**' में कृष्ण को एक महान समाजसेवी, लोकमैत्री, समाज-सुधारक, पथ-प्रदर्शक, आत्मत्यागी, लोक जननायक के रूप मे चित्रित किया है। कृष्ण का व्यक्तित्व ही इतना आकर्षक है कि वह लोगों के मन मे सहज ही श्रद्धा उत्पन्न कर देता है। कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन देखिये—

अतसि-पुष्प अलंकृत कारिणी,
शरद-नील सरोरुह-रंजनी।
नवल-सुंदर श्याम शरीर की,
सजल नीरद-सी कल कांति थी।

अधर सांध्य-सुव्योम समान थे,
दसन थे युग तारक से लसे।
मृदु हँसी वर ज्योति समान थी,
जननि मानस की अभिनन्दिनी।

विमल चंद विनिन्दक माधुरी,
विकच वारिज की कमनीयता।
वदन में जननी बलवीर के,
निरखतीं बहु विश्व विभूति थीं।

कृष्ण तो वस्तुत: —

सच्चा प्यारा सकल ब्रज का है उजाला।
दीनों का है परम धन और वृद्ध का नेत्र तारा।
बालाओं का प्रिय स्वजन और बंधु है बालकों का।

कृष्ण के संबंध में ओर अधिक क्या कहा जाये ? प्रिय प्रवास के कृष्ण तो—

सदय हृदय है औ सिंधु सौजन्य का है।
सरल प्रकृति का है, शिष्ट है, शांत धी है।
वह बहु विनयी है, मूर्ति आत्मीयता की।
हृदय तल दया के उत्स-सा श्याम का है।
वह पर दुख को था देख उन्मत्त होता।

'प्रिय प्रवास' के कृष्ण महान पराक्रमी थे। उन्हें सर्वभूत के रक्षण की अपार कामना थी और वे उसी को अपने जीवन का महान उद्देश्य समझते थे—

विपत्ति में रक्षण सर्वभूत का,
सहाय होना असहाय जीव का।
उबारना संकट से स्वजाति का,
मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है।

और इस प्रकार की सर्वभूत के हित की कामना तब संभव है, जब प्राणों की ममता न हो, क्योंकि—

बिना न त्यागे ममता स्वप्राण की,
बिना न जोखों ज्वलदाग्नि में पड़े।
न हो मका विश्व महान कार्य है,
न सिद्ध होता भव जन्म हेतु है।

कवि कृष्ण की लोकप्रियता की पराकाष्ठा उस समय बड़े ही अनिर्वचनीय ढंग से व्यक्त करता है, जब ब्रज के आसपास के मानवेतर प्रकृति के तत्त्व भी ब्रज-

भूमि वासियों के मनोभाव के स्वर में मिलाकर कृष्ण के वियोग में दुखी दीख पड़ते हैं—

फूलों पत्तों सकल तरुओं औ लता बेलियों से,
आवासों से ब्रज अवनि से पंथ की रेणुओं से।
होती-सी थी यह ध्वनि सदा कुंज से काननों से,
मेरे प्यारे कुँवर अब भी क्यों नहीं गेह आये !

कृष्ण का इतना महान और निर्मल चरित्र संस्कृत साहित्य में भी प्रस्तुत नहीं किया जा सका, हिन्दी साहित्य की तो बात ही क्या ?

'हरिऔध' ने राधा का जो चित्रांकन '**प्रिय प्रवास**' में किया, वह इतना महान और अलौकिक है कि वैसा चित्रण हमें कहीं नहीं प्राप्त होता। राधा का वह निर्मल रूप, वह देश,जाति और विश्व प्रेमिका-रूप, जो '**प्रिय प्रवास**' में निर्मित हुआ, वह हिन्दी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है।

राधा का प्रेम कृष्ण के साथ अत्यंत सहज और स्वाभाविक रूप से विकसित हुआ था। उसमें किसी प्रकार की वासना की गुंजाइश नही है। उनका प्रेम बाल-स्नेह के रूप में अंकुरित हुआ और समय पाकर तथा साहचर्य की भावना द्वारा उसका श्रेष्ठतम विकास हुआ। राधा की वरण की इच्छा कभी पूर्ण नहीं हुई और उनका जीवन ही वियोग से विपाक्त हो गया। राधा का कृष्ण के प्रति शुद्ध प्रेम था, इसीलिए राधा ने स्वर से स्वर मिलाकर, कदम-से-कदम मिलाकर विश्व-प्रेम के पथ पर डग बढ़ाया। कृष्ण मथुरा जाकर देश के कार्यों में इस प्रकार लिप्त हो गये कि उन्हें आत्महित की भावना की बलि देनी पड़ी। परन्तु राधा ब्रज में ही रहीं, उन्हें कृष्ण की स्मृति में ही वियोग के धरातल से ऊपर उठकर कृष्ण का विश्व के नाना रूपों में दर्शन करने का सौभाग्य मिला और उसी उच्च धरातल पर अधिष्ठित हो जाने पर उनके हृदय में विश्व का प्रेम जाग्रत हो उठा। राधा का वियोग उस भाव-भूमि पर पहुँच चुका है, जहाँ प्रियतम की झाँकी सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व में दीख पड़ती है और प्रेम की ममता सृष्टि की प्रत्येक वस्तु से इसलिए हो जाती है कि वह 'प्रियतम का अंश' है। यही कारण है कि :—

छू देती है मृदु पवन जो पास आ गात मेरा,
तो हो जाती परम सुधि है, श्याम प्यारे करों की।
फूली संध्या परम प्रिय की कान्ति-सी दीखती है,
मैं पाती हूँ रजनि तन में श्याम का रंग छाया।

और इस प्रकार के भाव-परिवर्तन के कारण ही राधा के हृदय में विश्व के प्रेम का रूप उदित हुआ और उन्होंने विश्व में अपने प्रियतम का अथवा ईश्वर के विराट रूप का दर्शन किया—

हो जाने से हृदय तल का भाव ऐसा निराला,

मैंने प्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये।
मेरे जी में हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा,
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश में ही।

राधा के चरित्र और उनके स्नेह का यह परमोत्कर्ष है। उनके इस महान व्यक्तित्व के विकास का ही परिणाम हुआ कि उन्होंने अपने जीवन को लोक सेवा में और दीन-दुखियों की रक्षा में लगा दिया। कृष्ण के मथुरा छोड़कर द्वारिका चले जाने के समाचार से तो ब्रज मे :—

छाई सारी ब्रज अवनि में सर्वदेशी निराशा।

लेकिन विश्व ने तो इस सर्वदेशी निराशा से वह अमर संदेश प्राप्त किया, जिसमे राधा के विश्व-प्रेमिका और समाज सेविका का उत्कृष्ट रूप विकसित हुआ :—

वे छाया थीं सुजन शिर की शासिका थीं खलों की,
कंगालों की परम निधि थी औषधि पीड़ितों की।
दीनों की थीं बहन, जननी थी अनाश्रितों की,
आराध्या थीं, ब्रज अवनि की प्रेमिका विश्व की थीं।

कृष्ण काव्य-परम्परा में कृष्ण और राधा तथा उनके वियोग का चित्रण करने वाले अनेक कवि हुए हैं, परन्तु माता यशोदा का वर्णन तो केवल सूरदास ने ही किया है। उनसे पूर्व और उनके अनुवर्ती कवियों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। सूरदास के उपरान्त हरिऔध ही माता यशोदा का वर्णन करने वाले कवि हैं। यशोदा को यह आशा थी कि उनके राम और श्याम शीघ्र मथुरा से लौटकर आ जायेंगे फिर उनके हृदय की वेदना रोके नहीं रुकती थी। जब कई दिन हो गये और कृष्ण लौटकर नहीं आये तो माता यशोदा का—

यदि दिन कट जाता बीतती थी न दोषा,
यदि निशि ढलती थी वार था कल्प होता।
पल-पल अकुलाती ऊबती थी यशोदा,
रट यह रहती थी क्यों नही श्याम आये।

परम दुखी और दुखकातर होने पर भी यशोदा के हृदय की भावना तो देखिये। वे कहती हैं, मैं जो सुख भोगना है या जो पीड़ा सह रही हूँ, भगवान वैसी वेदना किसी को न दे—

पत्रों पुष्पों रहित विटपी विश्व में हो न कोई,
कैसी ही हो सरस सरिता वारि शून्या न होवे।
ऊधो सीपी-सदृश न कभी भाग्य फूटे किसी का,
मोती ऐसा रतन अपना आह कोई न खोवे।
छीना जावे लकुट न कभी वृद्धता में किसी का,

ऊधौ कोई न कल-छल से लाल ले ले किसी का।
पूँजी कोई जनम भर की गाँठ से खो न देवे।
सोने का भी सदन न बिना दीप के हो किसी का।

यशोदा अपनी वस्तुस्थिति को समझ गयी थीं। वे अनुभव करने लगीं कि वह जिस पर आशा लगाये थी, वह तो पराये की थाती थी, जो अब उसके पास पहुँच चुकी है। इसलिए वे बड़ी व्याकुलता से इतना चाहती हैं :—

प्यारे जीवें प्रमुदित रहें औ बनें भी उन्हीं के।
धाई नाते वदन दिखला जायँ बारेक आके।

यशोदा का यह हृदयस्पर्शी चित्र उन्हें अपने प्रतिस्पर्द्धी के प्रति भी कितना उदार बना देता है। 'हरिऔध' ने माता यशोदा का जो मनोरम चित्र अपनी कल्पना की तूलिका से खींचा है, वह हिन्दी साहित्य की अमर पंक्तियों में गिना जायेगा।

'वैदेही वनवास' 'हरिऔध' का दूसरा महाकाव्य है। यह काव्य भी सर्गबद्ध है इसमें भी अठारह सर्ग हैं। काव्य के नायक हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र। **'वैदेही वनवास'** में भी करुण रस प्रधान है। इस रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी यथावसर समावेश किया गया है। **'वैदेही वनवास'** की कथा ऐतिहासिक होने के साथ ही ऐसी कथा है, जो युग-युग से हिन्दू-समाज का मार्ग दर्शन करती रही है। काव्य के नायक श्रीराम का धीरोदात्त रूप देखिये—

आप हैं प्रजा-वृन्द सर्वस्व
लोक आराधन के अवतार।
लोक-हित-पथ कंटक के काल
लोक मर्यादा पारावार।

यही नहीं **'वैदेही वनवास'** के नायक तो—

मर्यादा के धाम-शील सौजन्य धुरंधर
दशरथनन्दन राम परम कमनीय कलेवर।

'वैदेही वनवास' की कथा वाल्मीकि रामायण तथा 'उत्तर रामचरित' पर आधारित है। परन्तु कवि ने उसमें अपनी इच्छानुसार कुछ परिवर्तन भी किये हैं। कृष्ण के समान ही राम के जीवन के भी दो पृथक् अंश हैं। प्रथम अंश है बाल्यावस्था से लेकर वनवास तक और दूसरा भाग है, राज्याभिषेक से लेकर जीवन के अन्त तक। **'वैदेही वनवास'** के लिए कवि ने दूसरा अंश चुना है। कवि ने जिस कथा का वर्णन अपना उद्देश्य बनाया है, उस दृष्टि से यह अंश सर्वथा उपयुक्त है। राम पर जो दोषारोपण किया जाता है, उसका मार्जन भी इसी अंश के वर्णन द्वारा किया जा सकता था। राम के जीवन का सक्रिय तथा आदर्श नर रत्न रूप इसी अंश द्वारा व्यक्त होता है। कवि की लोकरंजन-भावना की तुष्टि के लिए यह

अंश सर्वथा उपयुक्त था। कवि ने राम के उपर्युक्त जीवन अंश का विस्तार से वर्णन किया है और संकेत से पूर्ण कथा का भी निर्देश किया है। '**वैदेही वनवास**' की रचना विशेष कर राम पर वैदेही त्याग के आक्षेप के प्रक्षालन के लिए हुई। 'हरिऔध' के इस दृष्टिकोण का परिणाम यह हुआ कि परम्परा से चली आती जन-श्रुति की कथा में उन्होंने क्रांतिकारी परिवर्तन किया। सस्कृत के काव्यों में राम द्वारा सीता के त्यागने का निर्णय तब तक सीता को ज्ञात नहीं हुआ, जब तक वे बन में नहीं पहुँच गयीं और लक्ष्मण उनसे विदा माँगते समय वास्तविक परिस्थिति नहीं बतलाते हैं। 'हरिऔध' की कला तथा कल्पना की सबसे महत्त्वपूर्ण चमत्कारिता इसी स्थल पर प्रकट होती है। वे इस बात को कदापि सहन नहीं कर सकते कि राम जैसा मर्यादा पुरुषोत्तम अपनी सती पत्नी को निर्दोष और सच्ची होने पर असत्य धारणा पर बनवास दे दे। इस घटना को वे मानवता के लिए कलंक समझते थे। यही नहीं, उस समय सीता गर्भवती थीं। इसलिए उनके साथ तो यह और भी भयंकर अन्याय था। अतः हरिऔध ने कालिदास और भवभूति के कथानक में परिवर्तन किया और राम से स्थानान्तरण का प्रस्ताव राज्य प्रासाद में ही रखवाया—

इच्छा है कुछ काल के लिए तुम को स्थानान्तरित करूँ,
इस प्रकार उपजा प्रतीति मैं प्रजा पुंज की भ्रांति हरूँ।
क्यों दूसरे पिसें, संकट में पड़ दुख भोगते रहें,
क्यों न लोक हित के निमित्त जो सह पायें हम स्वयं सहें।

राम के इस प्रस्ताव को सुनते ही सीता की जो दशा हुई, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उनके हृदय पर एक प्रकार से वज्रपात हुआ और वे बोलीं—

वदन बिलोके बिना बावले युगल नयन बन जायेंगे,
तार बाँध बहते आँसू का बार-बार घबरायेंगे।
मुँह जोहते बीतते बासर रातें सेवा में कटतीं,
हित वृत्तियाँ सजग रह पल पल कभी न थीं पीछे हटतीं।

लेकिन अपने हृदय के आवेग को सीता ने संयमित किया और यह अनुभव किया कि वे एक साम्राज्ञी और मर्यादा पुरुषोत्तम राम की अर्द्धांगिनी के समान व्यवहार नहीं कर रही हैं। उन्हें तो हर प्रकार से अपने पति की इच्छा में सहयोग देना चाहिए—

क्षमा कीजिए आकुलता में क्या कहते क्या कहा गया,
नहीं उपस्थित कर सकती हूँ मैं कोई प्रस्ताव नया।
अपने दुख की जितनी बातें मैंने हो उद्विग्न कहीं,
आपको प्रभावित करने का था उनका उद्देश्य नहीं।

भावुकता के आवेश के समाप्त होते ही सीता ने दृढ़ता से कहा—

वही करूँगी जो कुछ करने की मुझको आज्ञा होगी,
त्याग करूँगी इष्ट सिद्धि के लिए बना मन को योगी।
सुख वासना स्वार्थ की चिन्ता दोनों से मुँह मोड़ूँगी,
लोकाराधन या प्रभु आराधन निमित्त सब छोड़ूँगी।

सीता द्वारा प्रस्ताव स्वीकार कर लेने पर राम ने बड़े ही स्पष्ट रूप से उन्हें यह सूचित किया—

इसी सूत्र से वाल्मीकाश्रम में तुमको मैं भेजूँगा,
किसी को न कुत्सित विचार करने का अवसर मैं दूँगा।

लोकापवाद में धोबी की कथा जनश्रुति पर आधारित ज्ञात होती है। किसी भी आश्रित ग्रंथ में धोबी का उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत आधार ग्रंथों में तो यह उल्लेख है कि सीता ने स्वतः गर्भावस्था में ऋषि आश्रम में रहने की इच्छा व्यक्त की। परन्तु **'वैदेही बनवास'** में यह प्रस्ताव राम की ओर से उपस्थित कराया गया है। चर द्वारा संवाद-कथन की क्रिया में भी अन्तर है। वाल्मीकि रामायण में और कालिदास प्रणीत रघुवंश में जब रामचन्द्र जनपद का योगक्षेम पूछते हैं तब चर बड़ी विनम्रता से लोकापवाद की बात कहता है। लेकिन भवभूति के उत्तर रामचरित का ही कवि ने अनुसरण किया है।

किसी भी पौराणिकअथवा ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण कथा में युग के अनुरूप परिवर्तन करने की स्वतंत्रता कवि को रहती है। 'हरिऔध' ने भी युगानुरूप अपने आधार ग्रंथों की परम्परा से कुछ पृथख् होकर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कथा में परिवर्तन किया। उनके इस प्रकार के परिवर्तन से राम की कथा का महत्त्व बढ़ा है और युग-युग से जिस लांछन का आरोप होता आ रहा था उसका लोप भी इस ग्रंथ में होता है। 'वैदेही बनवास' का यही महत् उद्देश्य था, कवि ने अपनी कल्पना को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए जो परिवर्तन किये, उनसे राम-काव्य की परम्परा और भी अधिक गौरवान्वित हुई है।

हरिऔध के महाकाव्यों की विशेषता

'हरिऔध' के दो महाकाव्य ऐसे वियोगियों और वियोगिनियों की विरह-गाथा है, जिनका वैयक्तिक प्रेम विश्व प्रेम और लोक-रंजन की वेदी पर न्यौछावर होता है। हरिऔध के **प्रिय प्रवास** में राधा-कृष्ण के वियोगाग्नि की गाथा है। प्राचीन कवियों की विरह-गाथा से यह कथा बहुत कुछ भिन्न है। इसलिए कवि को कथा विस्तार का पर्याप्त अवसर मिल सका है। ब्रज में कृष्ण का जीवन इतना उल्लास-पूर्ण था कि उसने सारी ब्रज-धरा को प्रेम के रंग में रँग दिया था। 'हरिऔध' के तथा परम्परा के कृष्ण में अन्तर है। उन्होंने कृष्ण को एक प्रेमी और जाति, देश तथा समाज उद्धारक के रूप में चित्रित किया है। कृष्ण को ब्रह्म के रूप में चित्रित करनेवाले कवियों ने यदि उद्धव को ज्ञान और योग का संदेश लेकर भेजा था तो वह एक प्रकार से उचित था क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि राधा और गोपिकाएँ मोहाच्छन्न थीं और उनके मोह को दूर करने का मार्ग ज्ञानोपदेश ही था,परन्तु 'हरिऔध' के सम्मुख भिन्न परिस्थिति थी। उनके उद्धव योग और ज्ञान का बहाना बतलाकर गोपिकाओं को आश्वस्त नहीं कर सकते थे। परिणामतः कवि ने कृष्ण की कार्य व्यस्तता का तर्क उपस्थित किया है और यह तर्क **प्रिय प्रवास** के कृष्ण के लिए अधिक युक्तिसंगत भी कहा जा सकता है। अतः कृष्ण समाज और देश के कार्य में अत्यंत व्यस्त हो गये और उन्होंने गोपिकाओं तथा राधा को स्वार्थ त्याग और वैयक्तिक प्रेम के धगानल से ऊपर उठने का संकेत किया। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कृष्ण वसुदेव-देवकी के पुत्र थे। जब तक कंस की शक्ति का ज़ोर था उनकी एक न चलती थी। कृष्ण ने कंस को पराजित कर उन्हें कठिनाइयों से मुक्त किया। ऐसी स्थिति में कृष्ण को मथुरा में रख लेने का उनका आग्रह एक प्रकार से उचित ही कहा जायगा। कंस के अंत के बाद जो अनेक राजनीतिक समस्याएँ मथुरा में उत्पन्न हुई थीं, उनके समाधान के लिए कृष्ण का वहाँ रहना आवश्यक था। इसलिए कवि ने कृष्ण के ब्रज-आगमन की बात को एक प्रकार से असम्भव रूप प्रदान कर दिया। इसी स्थिति के कारण कृष्ण और राधा के पूर्ण मानवरूप और विश्वप्रेमिका रूप वर्णन करने का सुन्दर अवसर मिला। '**प्रिय प्रवास**' में

मनुष्य किस प्रकार अपनी वैयक्तिक अभिलाषाओं का दमन कर पूर्णता की ओर बढ़ता है, इसका संदेश विश्व को दिया गया है। यही बात कृष्ण के संबंध में भी कही जा सकती है। कृष्ण का राधा के प्रति गहरा प्रेम था, लेकिन समाज और देश की आवश्यकता के सामने उनका वैयक्तिक प्रेम लुप्त हो जाता है और उनका जीवन समाज और देश के कल्याण के लिए अर्पित हो जाता है। समाज और देश-हित के लिए अपने वैयक्तिक स्वार्थ और सुख की बलि देना **'प्रिय प्रवास'** का एक प्रमुख संदेश है।

'वैदेही वनवास' में भी 'हरिऔध' ने लोकाराधन के इसी संदेश को व्यक्त किया है, परन्तु सीता और राम की स्थिति राधा और कृष्ण की स्थिति से भिन्न है। कृष्ण परिस्थितियों के कारण राधा से विलग हुए थे। वे परिस्थितियाँ स्व-निर्मित थी। राम सम्राट थे और सीता साम्राज्ञी। राम ने लोकाराधन को अपने जीवन का परम लक्ष्य समझा। इसलिए उन्होंने सीता को वाल्मीकि आश्रम में भेजने का निर्णय लिया। कवि के विचारों में क्रमिक विकास तथा हृदय के अनुसार राम के विचारों और व्यवहार में क्रमिक विकास दिखलाया गया है, तभी राम लंका का दहन देख सके, जिसके वे स्वतः निमित्त थे। उनमें भी साम नीति के प्रति आस्था उत्पन्न होती है और वे हिंसा को बुरा कहने लगते है और हिंसा-वाद से अहिंसा को अधिक श्रेयस्कर मानते हैं। **'वैदेही वनवास'** के काल तक 'गाँधीयुग' का समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। 'हरिऔध' पर भी उसका प्रभाव पड़ा। इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

'हरिऔध' ने अपने काव्य द्वारा और राम के माध्यम से यह संदेश समाज तक पहुँचाया है। यह ठीक है कि वे गाँधी जी की विचार धारा से सहमत नहीं थे। गाँधी जी के बड़े प्रिय शिष्यगण भी कभी-कभी उनकी विचार धारा से सहमत नहीं हो पाते थे। यह एक दूसरा प्रश्न है। ऐसी अवस्था में 'हरिऔध' की मत-भिन्नता स्वाभाविक थी।

'हरिऔध' के दोनों महाकाव्यो में धर्म और दर्शन की किस विचारधारा की व्याख्या हुई है, इस पर ध्यान देना बड़ा आवश्यक है। 'हरिऔध' के धर्म के संबंध में अपने व्यक्तिगत विचार थे, दृष्टिकोण थे। लेकिन वे अपनी आस्था और वैयक्तिक विचार-सरणि को अपने तक ही सीमित रखकर लोक-संग्रह तथा समाज के रचनात्मक संगठन की दृष्टि से साहित्य-सर्जन करते थे। उनकी रचनाओं मे लोक-संग्रह की भावना ही प्रमुख है। यह भावना उनके दोनों महाकाव्यों की प्रमुख विचारधारा है। लोकरंजन और लोक हितैषी भावों की पीठिका पर ही उन्होंने धर्म की भावना को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया।

'हरिऔध' सत्यान्वेषी थे। उनमें भी ईश्वर के प्रति जिज्ञासा थी। वे भी उनके सत्य स्वरूप को समझने का यत्न करते थे। परन्तु उनके समझने की प्रणाली भिन्न

थी। वे पार्थिव रूप में ब्रह्म शक्ति की कल्पना नहीं कर पाते थे। धार्मिक भावना की चली आती परम्परा से उनकी भावना का विरोध था। वह विरोध अनेक प्रकार से प्रकट भी हुआ है। परन्तु उनके अचेतन मन की प्रबलता के कारण परम्परा के रूप भी अनेक काव्यों में यत्र-तत्र दीख पड़ते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि वे अपने अचेतन मन से न तो मुक्ति पा सके और न परम्परा के बंधनों को पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न कर सके। ऋषियों महर्षियों, और तत्त्वदर्शियों ने ईश्वर की अनेक प्रकार से कल्पना की। ज्ञान और भक्ति के अनेक मार्गों द्वारा उनकी व्याख्या का यत्न किया परन्तु वे भी 'नेति नेति' कहते सुने गये। उपनिषदों और अन्य धार्मिक ग्रंथों मे भी ईश्वर ज्ञान की वस्तु न होकर अनुभूति की वस्तु कहा गया है। पर ब्रह्म की कल्पना के साथ, हम अलौकिकता का जो आरोप करते हैं, उसी के आधार पर ईश्वर की विशेषता प्रतिपादित करने का यत्न करते हैं। रामायण और महाभारत में देवत्व का जो वर्णन मिलता है, वह युग के अनुसार बदलता गया।

हिन्दू धर्म इतना व्यापक और उदार है कि उसमें अनेक प्रकार के भाव-विचार उसी प्रकार आकर तिरोहित हो जाते हैं, जिस प्रकार किसी महासागर में नदियाँ विलीन हो जाती हैं। यह सत्य है कि राम और कृष्ण की कल्पना ईश्वर के रूप में होती है। उनमें अलौकिकता का आरोप किया गया, यह भी सच है। परन्तु यह भी सत्य है कि उनका मानवीय रूप में ही नही, कहीं-कही उससे निम्न स्तर का वर्णन भी किया गया। काव्य में दोनों प्रकार के रूप दीख पड़ते है। इस प्रकार के वर्णनों से हम इस निर्णय पर पहुँचते है कि मनुष्य यदि अपनी वृत्तियों के परिष्कार द्वारा उच्च धरातल पर जा सकता है तो अपनी दूषित भावनाओं के कारण वह अत्यंत निम्न स्तर पर भी पहुँच सकता है। इसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य की चित्त-वृत्ति पर समाज और युग का प्रभाव पड़ता है। यदि राम और कृष्ण ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए जन्म लिया तो वे मनुष्य के रूप में ही पृथ्वी पर आये, अतः उनका महापुरुष के रूप में अंकन पूर्णतः उचित और तर्कयुक्त है।

'हरिऔध' के दोनों महाकाव्यों के नायकों का मानवीय रूप भिन्न प्रकार की चली आती परम्परा से पृथक् है। इसलिए 'हरिऔध' की मानवता ने राम और कृष्ण के चित्रों में एक हलचल उत्पन्न की और लोगों ने यह अनुभव किया कि राम और कृष्ण के चरित्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया गया है। यह भी ठीक है कि 'हरिऔध' पर तत्कालीन सुधारवादी और आदर्शवादी समाज की भावना का प्रभाव पड़ रहा था। यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका समाधान हरिऔध का व्यक्तित्व ही कर सकता है। हरिऔध ने चाहे ईश्वर के अस्तित्व मे अनास्था व्यक्त की हो अथवा चाहे ईश्वर के संबंध में उनकी जिज्ञासा उच्च कोटि की न रही हो, परन्तु महापुरुष के संबंध में उनकी जो धारणा थी, उसमें ईश्वर के सब गुणों और

भावनाओं का सन्निवेश हो जाता है। हरिऔध के धार्मिक विचार इस दृष्टि से भिन्न है कि वे धार्मिक भावना को चाहे वैयक्तिक सम्पत्ति मानते रहे हों, परन्तु धार्मिक कार्यों को वे सामाजिक दृष्टिकोण मे ही देखते थे। उनका स्पष्ट मत था कि जो तत्त्व समाज को धारण करते हैं, संगठित करते हैं, वही धर्म के सिद्धान्त हैं। यही कारण है कि वे धर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों में ही आस्था रखते थे और समाज की उपादेयता की दृष्टि से धर्म की कल्पना करते थे।

'हरिऔध' संधिकालीन स्थिति के सच्चे प्रतिनिधि थे। उनके युग में साहित्य, समाज, धर्म और राजनीति की अनेक प्राचीन परम्पराएँ लुप्त हो रही थीं और नवीन परम्पराओं का उदय हो रहा था। विज्ञान के आधार पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो रहा था। परिणामस्वरूप संधिकाल में सांध्य वेला के समान ही दोनों की छाया वर्तमान रहती है। यही कारण है कि 'हरिऔध' के साहित्य में कभी-कभी विरोधाभास मिलता है। कृष्ण और राम को वे लौकिक महापुरुष के रूप में चित्रित करने का यत्न करते है, परन्तु उनकी अलौकिकता भी कहीं-कहीं से झाँकती दीख पड़ती है। वे नवधा भक्ति की बात करते हैं। उनके ध्यान में भक्ति की भावना है, लेकिन संधिकाल के नवीन विचारों के अनुसार ही वे उनकी व्याख्या करते हैं।

मुक्ति की आकांक्षा से विश्व के संघर्ष का परित्याग कर जो जंगलों में बसता है, वह तो आत्मार्थी है। मुक्ति की आकांक्षा तो इसी समाज के उत्थान के साथ जुड़ी होनी चाहिए। वह व्यक्ति ही वास्तविक आत्मत्यागी है, जो लोकहित के लिए अपने आत्म-सुख को त्य ग कर समाज की सेवा करता है। पर हित करने वाले ही व्यक्ति मुक्ति के अधिकारी हैं, यह 'हरिऔध' की मान्यता थी। दोनों ही काव्यों में परम्परा से चली आती इन अवतारों के प्रति मानव का प्रभाव 'हरिऔध' पर भी अव्यक्त रूप से पड़ा है और स्वाभाविक प्रवाह में अचेतन मन के प्राबल्य के कारण उनकी अभिव्यक्ति हुई है। यह कवि के लिए पूर्णत: स्वाभाविक है। यह इस बात को प्रकट करता है कि कवि दुराग्रह के कारण अथवा इन कथाओं को बौद्धिक रूप देने के लिए कृत्रिमता का बाना नहीं पहनता और अपने नैसर्गिक मनोभावों के मार्ग का ही अनुसरण करता है। लोक सेवा और परहितरत रहना ही 'हरिऔध' की दृष्टि में सबसे बड़ी धर्मानुभूति है। वे उस व्यक्ति को ही परम भागवत और श्रद्धास्पद समझते थे, जो विश्व में अपने आचरण द्वारा सत् शिक्षा, सदाचरण और विचार को प्रेरणा प्रदान करता है। उनके आदर्श नायक और नायिकाओं में उनके हृदय की यह भावना ही विश्व रूप से मुखरित हो उठी हैं। 'हरिऔध' के महाकाव्यों में और उनके साहित्य में भी भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्परा की धारा को प्रवाहित रखने का प्रयास हुआ है। वे **सत्यं वद, धर्मंचर स्वाध्यायन् मा प्र मद, मातृदेवोभव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव** को इस संस्कृति

की आधार शिला मानते थे। धर्म और संस्कृति के इन सार्वभौम सिद्धान्तों में उनकी बड़ी आस्था थी। वे जीवन के सत् पक्ष, रचनात्मक और लोक रंजनात्मक पक्ष पर विचार करते थे। परिणामतः उनकी रचनाओं में ऐसे पात्रों का वर्णन बहुत कम मिलता है, जिनके विचार कुत्सित हों अथवा जिनकी कुत्सित जीवन-गाथा का वर्णन पढ़कर इस दिशा में कुछ ध्यान करने अथवा सोचने का भी अवसर मिले। वे जीवन के अन्धकार पक्ष की ओर ध्यान ले जाना आवश्यक नहीं समझते थे।

उनके साहित्य का भौतिक जीवन, आध्यात्मिक जीवन की पीठिका पर आधारित था। वे भौतिक जीवन का विकास **'सर्वभूत हिते रतः'** की भावना के अनुरूप चाहते हैं। उनके महाकाव्यों के पात्र जीवन के कर्म क्षेत्र में भौतिक सुखों की प्रगति के लिए, भौतिक जीवन के कल्याण के लिए संघर्षरत होते हैं परन्तु उनका जीवन स्वतः ऐच्छिक सुखों का मुखापेक्षी नहीं होता। वे समाज और देश का कल्याण करते हैं इसलिए नहीं कि जीवन में विलासिता अथवा उन्माद को प्रश्रय मिले। वे भौतिक सुखों को आध्यात्मिक जीवन की ओर प्रवृत्त करनेवाला माध्यम समझते थे। कृष्ण समाज और देश में शांति और सुख चाहते हैं परन्तु वे स्वतः अपने लिए इनकी प्राप्ति के लिए संघर्ष नहीं करते। राम समाज तथा लोकरंजन के लिए वैयक्तिक सुखों की बलि देते हैं। राधा अथवा सीता के लिए भी यही बात कही जा सकती है। लोक कल्याण लक्ष्य के सम्मुख उनके वैयक्तिक जीवन का सुख तिरोहित हो जाता है। विशेषकर **'वैदेही वनवास'** में स्पष्ट रूप से 'हरिऔध' ने भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के संघर्ष की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। वाल्मीकि आश्रम में रहने वाली विदुषी विज्ञानवती भौतिक जीवन में आस्था रखने वाली वर्तमान भौतिकवाद की प्रतीक है। उसके हृदय में आध्यात्मिक जीवन के प्रति अनेक प्रकार की आशंकाएँ उत्पन्न होती हैं। सीता अपने तर्कों द्वारा उसे यह समझती है कि भौतिक जीवन की तड़क-भड़क क्षणिक है, मृगतृष्णा है, जीवन का परम लक्ष्य और सुख तो आध्यात्मिक विचार द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। सीता का जीवन अकर्मण्यों का आध्यात्मिक जीवन नहीं है। वह तो कर्मवाद में रत एक लोक-समर्पिता नारी का जीवन है।

'हरिऔध' के महाकाव्यों में प्राचीन गौरव गाथा का गुणगान कुछ परिवर्तित रूप में मिलता है। उन्होंने जहाँ भारत के महापुरुषों की गुण गाथा का परिवर्तित रूप में गान किया है, वहीं उन्होंने भारत की महानता और उसके प्राकृतिक सौंदर्य का विशद रूप में गुण-गान किया है। भारत के प्राचीन गौरव के धार्मिक पक्ष की अपेक्षा उन्होंने उसके सामाजिक पक्ष की ओर तथा उन्होंने अहिंसा, सत्य, सहकारिता और सहिष्णुता के आधार पर समाज रचना की ओर अधिक ध्यान दिया है। समाज, जाति और देश के उत्थान के लिए वे शिक्षा का देशव्यापी प्रचार चाहते थे। यही नहीं, **"वैदेही वनवास"** में सुतवती सीता नामक सर्ग में सीता द्वारा लव-कुश की

शिक्षा का जो चित्र उपस्थित किया गया है, वह आधुनिक शिक्षा सिद्धान्तों पर आधारित है। सीता प्राकृतिक स्थूल पदार्थों द्वारा अपने पुत्रों को सूक्ष्म बातों का ज्ञान कराती है। बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था प्रकृति के वातावरण में की गयी है और क्रीड़ा के साथ ही, उन्हें जीवन के अनेक प्रकार के अनुभवों की शिक्षा भी प्रदान की गई है।

प्रिय प्रवास और '**वैदेही वनवास**' में मानव-कल्याण की भावना का चरम विकास हुआ है। इन दोनों महाकाव्यों के पुरुष और नारी पात्र बड़े मनोयोग से मानव कल्याण के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं। ब्रज में कृष्ण के व्यस्त जीवन की जो झाँकियाँ '**प्रिय प्रवास**' में प्रस्तुत की गयी हैं, वे मानव कल्याण के कार्यों से ओत-प्रोत हैं। वे ब्रज के निवासियों की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं। वे अपने जीवन की चिन्ता न कर इन्द्र के कोप तथा दावाग्नि से ब्रज-वासियों, गोपों और गायों की रक्षा करते हैं। कृष्ण मानव कल्याण के लिए अपने वैयक्तिक सुखों की बलि देते हैं। राधा भी दीन-दुःखियों की सहायता करने में अपना जीवन व्यतीत करती है। '**वैदेही वनवास**' में भी राम और सीता का चित्रण इसी रूप में हुआ है। लोक-रंजन की भावना से राम अपनी प्रिया को स्थानान्तरित करते हैं। यही नहीं, जीवन के उत्तरार्द्ध में वे दुश्मनों का दमन भी अहिंसात्मक नीति से करते हैं। सीता जी भी महर्षि के आश्रम में रुग्णों, असमर्थों और दीन-हीन की सेवा में रत दीख पड़ती है। उनका जीवन भी मानव कल्याण के लिए अर्पित हुआ है। समाज, जगत् और देश की सेवा करना ही 'हरिऔध' मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य समझते थे। उनके ये चित्र सर्वथा सफल हुए हैं।

'हरिऔध' के इन काव्यों में से '**वैदेही वनवास**' में शासक और शासन की व्यवस्था का भी चित्रण मिलता है। वैदेही वनवास में राम चक्रवर्ती सम्राट के रूप में चित्रित किये गये हैं। राम साम-नीति को प्रधानता देनेवाले शासक हैं। वे चाहते हैं कि उनके साम्राज्य में न तो किसी प्रकार का कष्ट हो और न किसी के प्रति किसी प्रकार का अन्याय हो। यहाँ तक कि साम-नीति के आधार पर शासन व्यवस्था स्थापित करने के लिए वे अपने सुखों का त्याग करते हैं। शासन-व्यवस्था में वे जनता की सम्मति को महत्त्वपूर्ण समझते हैं। उनके चर राज्य में घूम-घूमकर लोगों की भावना का पता लगाते रहते हैं। साम-नीति अनुमोदित शासन-व्यवस्था के लिए वे अपनी पत्नी तक का त्याग करते हैं। भारतीय शासन विधान में साम-नीति सर्वोत्तम शासन-व्यवस्था मानी जाती है। जिस युग में '**वैदेही वनवास**' की रचना हुई, उस युग में भारत ने अपना अहिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ किया था। उस आन्दोलन का अव्यक्त रूप से उनके विचारों पर भी प्रभाव पड़ा था। यही कारण है कि राम का चित्रण एक अहिंसावादी सम्राट के रूप में हुआ है। राम एक आदर्श शासक थे। शासन व्यवस्था में वे अपने सहकारियों की सम्मति लेते थे और

उनकी इच्छानुसार कार्य करते थे।

समाज सेवा अथवा मानव कल्याण का कार्य त्याग और सहानुभूति पर ही आश्रित है। 'हरिऔध' के इन काव्यों में त्याग और सहानुभूति के आदर्श उदाहरण मिलते हैं। राम, कृष्ण, सीता और राधा का जीवन त्याग और सहानुभूति का प्रतीक है। जनता की इच्छाओं के प्रति सहानुभूति रहने के कारण ही राम बड़े से बड़ा त्याग करते है और जनता के प्रति सहानुभूति के कारण ही सीता विष का घूँट पीती हैं। वे आश्रम के लोगों के प्रति अपार सहानुभूति रखती थीं और उनका दुख दूर करने के लिए प्रयत्न करती थीं। '**प्रिय प्रवास**' की राधा और कृष्ण का जीवन त्याग और सहानुभूति की ही साधना है। '**प्रिय प्रवास**' में नूतन नवधा भक्ति की व्याख्या की गयी है। 'हरिऔध' के अनुसार त्याग और सहानुभूति मानव जीवन के वे अमूल्य गुण हैं, जिनके द्वारा कोई भी सामाजिक पुरुष मानव कल्याण और लोक रंजन के कार्यों में सफल हो सकता है।

'हरिऔध' के महाकाव्यों में प्रेम का जो वर्णन मिलता है, वह हिन्दी-साहित्य की प्राचीन परम्परा से कुछ भिन्न है। ब्रज भाषा साहित्य में प्रेम जहाँ अकर्मण्यता का पाठ पढ़ाता है और ऊहात्मक भावनाओं की वृद्धि करता है, वहाँ 'हरिऔध' के पात्रों का प्रेम कर्तव्य द्वारा अनुशासित है। उस पर कर्तव्य का अंकुश है। प्रेम की उत्कटता उन्हें अकर्मण्य बनाने की अपेक्षा कर्तव्यपरायण और जीवन में कहीं अधिक गतिशील बनाती है। 'हरिऔध' का प्रेम त्याग और कर्तव्य पर आश्रित है। '**प्रिय प्रवास**' और '**वैदेही वनवास**' में इसी प्रकार के प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि राधा कृष्ण का प्रेम सीता और राम के प्रेम से अनेक बातों में भिन्न था तथापि दोनों का लक्ष्य एक ही था। जहाँ राधा अपने प्रियतम के लोकसंग्रही कार्यों में प्रेमिका के रूप में योग दे रही थीं, वहीं सीता धर्म पत्नी और सहचरी के रूप में अपने पति के प्रेम के लिए कठोर कर्तव्य का आह्वान करती हैं और वनवास का प्रस्ताव स्वीकार करती हैं। प्रिय के परोक्ष होने पर प्रेमी अनेक प्रकार से अपनी भावनाएँ व्यक्त करता है, लेकिन 'हरिऔध' साहित्य के पात्रों में यह बात नहीं दीखती। प्रियतम के दूर रहने पर वे विलाप नहीं करतीं वरन् उनके लोक सेवी रूप का विकास हुआ है और उनके प्रेम ने उन्हें ऐसी क्षमता प्रदान की है कि वे विश्व की समस्त विभूतियों में अपने प्रिय की झाँकी देखने में सफल होते हैं। इसका ही संभवतः यह परिणाम है कि 'हरिऔध' के लौकिक प्रेम की परिणति अलौकिक प्रेम में हुई है। इस अलौकिक प्रेम के कारण ही उनके प्रेमी सर्वभूत के हित में रत दीख पड़ते हैं। प्रेम उन्हें कर्तव्य पालन के लिए भी अधिक विधायक शक्ति प्रदान करता है।

प्राचीन संस्कृति और विचार-धारा पर पूर्ण आस्था रखने पर भी सामाजिक जीवन और लोक कल्याण अथवा लोक रंजन की भावना का मुख्य लक्ष्य रहने के

कारण 'हरिऔध का' ऐकांतिक साधना में विश्वास न था। उनके पात्र अथवा उनके आदर्श व्यक्ति समाज का त्याग कर वन में जाकर किसी प्रकार की साधना नहीं करते। 'हरिऔध' का यह स्पष्ट मत था कि मनीषियों, विचारकों और साधकों को इस समाज के बीच रहकर अपने समाज और देश के उद्धार के लिए कार्य करना चाहिए। इसी विचार धारा का ही परिणाम है कि उनके राम और कृष्ण अवतार होते हुए भी समाज की सेवा में लगे रहे। वैयक्तिक साधना के लिए जीवन व्यतीत करने वालों को वे एक प्रकार का आत्मार्थी समझते थे। कृष्ण ने भी **'प्रिय प्रवास'** में सच्चे साधक की इसी रूप में व्याख्या की है। किसी भी साधनारत व्यक्ति के लिए सहिष्णुता की आवश्यकता होती है। उसे अनेक प्रकार के विरोधों, कटु वचनों का सामना करना पड़ता है,लेकिन विरोधी विचार-धारा उसे अपने कर्तव्य से च्युत नहीं करती। **'वैदेही वनवास'**के राम में इसी प्रकार की सहिष्णुता की भावना व्यक्त हुई है। वे अपने छोटे से छोटे, हीन से हीन विरोधी की भावना का निरादर नहीं करते, वरन उसके विरोध को ही जीवन की साधना का आधार बना लेते हैं। प्राचीन आदर्शों और विचारधारा की पीठिका पर वर्तमान भारतीय जीवन के विकास के महान उद्देश्य से ही इन दो महाकाव्यों की रचना हुई।

उपसंहार

हिन्दी-साहित्य के दीर्घ विकास काल में 'हरिऔध' का सर्वतोमुखी प्रतिभावान व्यक्तित्व ध्यान आकृष्ट करता है। उनकी यह प्रतिभा अनेक रूपों में प्रतिफलित हुई है। मुख्यतः उनके संबंध में एक विद्वान, चिंतक, कवि, गद्य लेखक तथा आचार्य की दृष्टि से विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

'हरिऔध' ने संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, गुरुमुखी और हिन्दी भाषा का अध्ययन किया था। केवल अध्ययन ही नहीं, इन भाषाओं का उन्होंने पूर्ण रूप से मनन किया था और उनका इन पर समान अधिकार था। हिन्दी साहित्य क्षेत्र से वह पीढ़ी अब पूर्ण समाप्तप्राय हो रही है, जिसे इस प्रकार अनेक भाषाओं का ज्ञान रहा हो। 'हरिऔध' ने इन भाषाओं के ज्ञान से अनेक प्रकार का लाभ उठाया। संस्कृत भाषा के गहन अध्ययन के फलस्वरूप उनके काव्यों की भाषा में विशिष्टता वर्तमान है। इस भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण ही, वे हिन्दी खड़ी बोली के आदि महाकवि हो सके। उन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक संस्कृत के छंदों को हिन्दी भाषा के उपयुक्त बनाया। उन्होंने इस प्रकार केवल हिन्दी महाकाव्य की परम्परा का द्वार ही नहीं उन्मुक्त किया, वरन उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और संस्कृत वृत्तों के लिए भी हिन्दी क्षेत्र का मार्ग प्रशस्त किया।

फ़ारसी तथा अरबी भाषा के गहन अध्ययन के फलस्वरूप 'हरिऔध' हिन्दी क्षेत्र में काव्य की एक नयी शैली के प्रवर्त्तक हो सके। उन्होंने उर्दू बहरों को बड़ी कुशलता से हिन्दी छंदों में ढालकर उर्दू-शैली में कई काव्यों का निर्माण किया। इन काव्यों से उनकी मौलिक प्रतिभा, भाषा पर असीम अधिकार का हमें परिचय मिलता है। बोल-चाल संबंधी उनकी मुहावरेदार कविताएँ उनके फ़ारसी और अरबी अध्ययन और लोक-चेतना के ज्ञान का फल हैं। गुरुमुखी भाषा के अध्ययन से उन्हें नया दृष्टिकोण मिला। इस भाषा के अध्ययन के फलस्वरूप उनमें जातीय संकीर्णता के भाव उत्पन्न न हो सके। गुरुनानक साहब के साहित्य का अध्ययन करने का ही यह फल था कि उनमें ऊँच-नीच का भाव नहीं था और वे समस्त मानव जाति को समान-दृष्टि से देखते थे। 'हरिऔध' ने इन भाषाओं के अध्ययन

का पूरा-पूरा लाभ उठाया।

'हरिऔध' की भूमिकाएँ उनके गहन अध्ययन की उदाहरण हैं। इन भूमिकाओं में उन्होंने उर्दू, फ़ारसी और अरबी भाषा के ही नहीं, अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं के अनेक प्रकार के प्रमाण एकत्र कर अपने नवीन नियमों और तर्कों का प्रतिपादन किया है। इन भूमिकाओं में उद्धृत अनेक उद्धरण उन्हें कंठस्थ थे और आवश्यकता पड़ने पर वे अपने भाषणों में भी उनका उपयोग किया करते थे।

'हरिऔध' यद्यपि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के इतिवृत्तात्मक कविता-युग में हुए थे तथापि उनका कार्य-क्षेत्र और कविता-क्षेत्र तत्कालीन कवियों से बहुत भिन्न था। राधा-कृष्ण और सीता-राम के चरित्रों को नया मोड़ देने में तो वे सफल हुए ही, उन्होंने उनके जन-साधारण रूपों का भी विकास किया। उन्हें भय था कि इन लोगों के आदर्श चरित्र को देखकर लोग उन्हें अवतारी पुरुष कहकर उनकी उपेक्षा कर सकते है। अतः जन-साधारण में इस प्रकार के व्यक्ति-तत्त्वों का उन्होंने चित्रण किया और अपने **'ठेठ हिन्दी का ठाठ'** और **'अधखिला फूल'** में देवनन्दन, देवबाला और देवस्वरूप तथा देवहूती के रूप में उनको उपस्थित किया। उन्होंने काव्य का जन-जीवन से सम्पर्क स्थापित किया और तुलसीदास की लोक-रक्षक भावना को लोकाराधन भावना के रूप में उपस्थित करके नयी शक्ति प्रदान की। उनके उपन्यास, नाटक तथा काव्य सभी इसी भावना पर आधारित है। वास्तव में उनके साहित्यमें जन-गण को साथ लेकर चलने की सच्ची भावना वर्तमान है। यही नहीं, 'हरिऔध' नें समाज तथा देश में फैली हुई अनेक रूढ़िगत भावनाओं का अपनी रचनाओं द्वारा मूलोच्छेदन किया। उनके चिंतन का ही परिणाम है कि हमने अपने राधा-कृष्ण और सीता-राम को नये रूप में देखा और हमारी विलासी भावनाओं में परिवर्तन हुआ। अनेक दार्शनिक तथा सामाजिक विचारों का उनके काव्यों में बडी सरसता के साथ गुंफन हुआ है। वे कोरे कवि अथवा लेखक ही नही थे। उन्होंने समाज के पथ-प्रदर्शक, नेता तथा उपदेशक रूप में भी कार्य किया है।

लोगों की ऐसी धारणा है कि 'हरिऔध' की कविताओं में राष्ट्रीय-भावना का अभाव है। ऐसे लोगों की आलोचना के संबंध में क्या कहा जाये? 'हरिऔध' की अनेक राष्ट्रीय कविताएँ हैं। वे वीर-पूजा को महत्त्व नहीं देते थे। साथ ही, राजनीति को काव्य से पृथक् रखते थे। यही कारण है कि उनकी राष्ट्रीय कविताएँ भारत के सांस्कृतिक, प्राकृतिक और सामाजिक जीवन से ही संबंधित हैं। उन्होंने अपने राष्ट्र को ही शिव का रूप घोषित किया है। हाँ, उनके साहित्य में नेताओं अथवा विभिन्न आन्दोलनों से संबंध रखनेवाली कविताओं का अभाव अवश्य है। 'हरिऔध' की राष्ट्रीय कविताएँ न तो एकदेशीय हैं और न सामयिक। उनकी भारत संबंधी कविताएँ हिन्दी-साहित्य की निधि हैं। वे उन कवियों में न थे, जो

नेताओं के गुणगान द्वारा राष्ट्रीय कवि कहलाने की स्पृहा रखते हैं। उनके जीवन का परम लक्ष्य सच्ची साहित्य साधना था। उनका चिंतन मनन इस क्षेत्र तक ही सीमित था।

'हरिऔध' प्रथम कवि हैं, जिनकी रचना में खड़ी बोली को कोमलकान्त पदावली का सौष्ठव प्राप्त हो सका। प्रसिद्ध पत्रकार श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर ने लिखा है—"खड़ी बोली के जिन शब्दों में काव्य का लालित्य भारतेन्दु को भी न दिखाई दिया, उसका आविष्कार करके आपने हिन्दी संसार को चकित कर दिया। जिस रस का स्रोत आपने दिखाया, उसमें आज हिन्दी संसार कल्लोल कर रहा है।" आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार, "हरिऔध आधुनिक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ एवं वयोवृद्ध कवि हैं। कई बातों में समानता होते हुए भी कवित्व की दृष्टि से 'हरिऔध' का स्थान श्री मैथिलीशरण गुप्त से भी ऊँचा है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से भी उत्तम है। मैं उनकी तुलना बांग्ला के महाकवि मधुसूदन से करता हूँ और सब मिलाकर **'मेघनाद वध'** काव्य से **'प्रिय प्रवास'** को कम नहीं मानता। 'हरिऔध' कविता कामिनी के प्राणवल्लभ रहे हैं। उन्होंने जीवन में बड़ी घोर शब्द साधना की थी। उनका शब्द शिल्प, उनका रचना-विन्यास हिन्दी की खड़ी बोली का आदर्श रूप है। हिन्दी की खड़ी बोली की असीम शक्ति तथा उसकी भविष्य की संभावना का ज्ञान उनकी रचनाओं से ही हुआ। क्या ब्रज-भाषा, क्या खड़ी बोली और क्या बोल-चाल की भाषा, प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने हिन्दी साहित्य को चरमोत्कर्ष की सीमा पर पहुँचा कर छोड़ दिया है।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं, "आजकल हिन्दी के जिन लब्धप्रतिष्ठ पुराने कवियों को हम काव्य के आधुनिक मार्ग पर पाते हैं, उनमें से कई एक पुरानी परिपाटी पर अत्यंत रसमयी रचना कर चुके हैं। ऐसे कवियों में आधुनिक काव्य-क्षेत्र के महारथी 'हरिऔध' प्रमुख हैं। लोग खड़ी बोली के कई रूपों की झलक दिखानेवाले उनके उन प्रौढ़, सरस, मधुसिक्त काव्यों से तो परिचित थे ही, जिन्होंने खड़ी बोली काव्य के गौरव पूर्ण भविष्य को स्थिर किया है। 'हरिऔध' शब्दों के कितने बड़े धनी हैं—यह उनके **'प्रिय प्रवास'** आदि काव्यों का अनुशीलन करनेवाले जानते ही हैं। खड़ी बोली में जब उनकी कोमलकान्त पदावली इतनी मिठास घोल देती है तब स्वभावतः कोमल और मधुर ब्रज-भाषा के बीच उसकी छटा का क्या कहना? **'रस कलस'** में हरिऔध ने काव्य की प्रतिष्ठित परम्परा को चरम उत्कर्ष पर पहुँचा कर छोड़ दिया है।"

भाषा और कोमलकान्त पदावली के अतिरिक्त विषय की दृष्टि से भी 'हरिऔध' की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण ठहरती हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा युग का प्रतिनिधित्व ही नहीं किया है, वरन् वे एक युग की मूर्तिमान साहित्यिक प्रगति हैं। उन्होंने अपनी कल्पना का प्रयोग भाषा के उस शुद्ध स्वरूप के निर्माण में भी किया

है, जो यदि संस्कृत की उल्टी गंगा न बहती तो आज सर्वत्र दृष्टिगत होता।

'हरिऔध' की कल्पनाएँ तथा उनके उत्कर्ष भी दर्शनीय है। उन्होंने अपनी कल्पना द्वारा राधा-कृष्ण और सीता-राम के चरित्रों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है और साहित्य-क्षेत्र में विचारात्मक क्रांति उत्पन्न की। महाकवि 'हरिऔध' हिन्दी के व्यास हैं। आपने अनेक पुस्तकें लिखीं और असंख्य कविताएँ भी, किन्तु **प्रियप्रवास** आपकी अमर कृति है जो अपने भाव-विन्यास, भाषा-सौष्ठव और वर्ण्य चातुरी के लिए विख्यात है।

'हरिऔध' की काव्य-प्रतिभा बहुमुखी थी। उसने अनेक क्षेत्रों का आलोड़न किया और अमूल्य रत्नों से हिन्दी-साहित्य की गोद को अलंकृत किया। नि:संदेह कवि के रूप में उनका अन्यतम स्थान है।

कवि के समान ही 'हरिऔध' एक प्रौढ़ गद्यकार थे। उन्होंने गद्य-साहित्य की विभिन्न शाखाओं में रचना का मार्ग-प्रदर्शन किया है। उनके गद्य की शैली की अनेक विशेषताएँ हैं। 'हरिऔध' का गद्य भी कवित्वमय होता है और उनकी रचनाओं पर गद्य की स्पष्ट छाप मिलती है। हरिऔध ने गद्य क्षेत्र में अनेक शैलियों का प्रवर्तन किया था। वे ठेठ हिन्दी और मुहावरेदार गद्य शैली के प्रवर्तक हैं। गद्य लिखते समय भी 'हरिऔध' का धारा-प्रवाह पद्यात्मक ही रहता है। उनके गद्य में पद्य की-सी ही लहर,शब्द संगठन, भावभंगी एवं माधुर्य मिलते हैं। गद्यात्मक सौष्ठव का ह्रास और पद्यात्मक विभूति की उत्कृष्टता उनके गद्य में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उनका गद्य पढ़ते समय काव्यात्मक प्रतिभा का वह चमत्कार, शाब्दिक बाहुल्य का वह भंडार और भाव-निदर्शन की वह विशिष्टता प्राप्त होती है, जो कि साधारणत: सामान्य कवियों में भी नहीं दिखाई पड़ती। 'हरिऔध' ने जहाँ इस प्रकार का कवित्वपूर्ण गद्य लिखा है, वहीं उन्होंने जन साधारण के लिए **'ठेठ हिन्दी का ठाठ'** भी खड़ा किया है। चलते हुए विषयों के लिए उछलती-कूदती बोलचाल की मुहावरेदार भाषा का विकास किया है। कविता-क्षेत्र में उन्होंने मार्ग-प्रदर्शन किया तो गद्य-क्षेत्र में अनेक शैलियों का प्रवर्तन कर उन्होंने हिन्दी साहित्य के भंडार तथा अभिव्यक्ति-माध्यम की विविध विधाएँ हमें प्रदान कीं। हिन्दी का गद्य-साहित्य भी उनकी प्रतिभा, कल्पना उनके विशाल रचनात्मक साहित्य का ऋणी है। 'हरिऔध' का गद्य पद्यात्मक भले ही हो, परन्तु उनकी अभिव्यक्ति में किसी प्रकार का दोष नहीं है। 'हरिऔध' के गद्य में बुद्धि तत्त्व की अपेक्षा हृदय-पक्ष की अधिकता है। 'हरिऔध' की गद्य-रचनाओं में कल्पना और साहित्यिकता की अधिकता है। जो लोग इनके गद्य में पंडित रामचन्द्र शुक्ल की विशिष्टताएँ चाहते हैं, वे भी अन्याय करते हैं। उपाध्याय जी में शब्द-बाहुल्य एवं वाक्य-विस्तार अधिक दिखाई पड़ते हैं, जो कि शुक्ल जी के बिलकुल विपरीत है। परन्तु इसके लिए उपाध्याय जी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि दोनों लेखकों

के दो भिन्न-भिन्न मार्ग और विचार है। 'हरिऔध' का गद्य उस समय का गद्य है, जब वे गद्य साहित्य का नव निर्माण कर रहे थे अथवा 'गागर में सागर' भरने की बात अथवा थोड़े शब्दों में गम्भीर विचारों के कथन की शैली का विकास न हो सका था। 'हरिऔध' में बुद्धि और हृदय तत्त्व का समरसतापूर्ण समन्वय हुआ था। यही कारण है कि विवेचनात्मक और गम्भीर आलोचनात्मक निबंधों में भी उनका हृदय झलकता रहता है।

वह गंभीर मनीषी, जो मार्ग का निदर्शन करे और मार्ग के लिए आदर्शों का निर्माण करे, 'आचार्य' कहलाता है। 'हरिऔध' हिन्दी साहित्य की परम्परा में संभवत: इस युग के अन्तिम आचार्य है। उन्होंने काव्य-क्षेत्र में कवियों का निश्चित रूप से मार्ग-प्रदर्शन किया है। अलंकारों पर तो अनेक ग्रंथ लिखे गये, परन्तु रस ग्रंथों का अभाव 'हरिऔध' के समय तक ही रहा। 'हरिऔध' ने **'रस-कलस'** द्वारा इस अभाव की पूर्ति की। यही नहीं, उन्होंने विभिन्न रसों की परिभाषा, लक्षण आदि गद्य में देकर अपनी ब्रज-भाषा कविता के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि रीतिकालीन आचार्यों ने श्रृंगार-रस का वर्णन तो बड़े विस्तार से किया है परन्तु प्रसंगवश अन्य रसों का वर्णन करके अपनी इति-कर्तव्यता समझ ली है।'हरिऔध' ने नौ रसों का सांगोपांग वर्णन ही नहीं किया है, वरन् एक-एक लक्षण के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करके अपने अध्ययन और आचार्यत्व का परिचय दिया है।

नायिकाओं के भेद-वर्णन में भी उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय देते हुए समय के अनुसार नवीन नायिकाओं की उद्भावनाएँ की हैं। सँभव है, वे नायिकाएँ लक्षण के मानदण्ड पर खरी न उतरें परन्तु इस नवीन उद्भावना ने काव्य-रसिकों के सम्मुख चिंतन की नवीन सामग्री तो प्रस्तुत की ही है।

'हरिऔध' ने **'रस कलस'** में लगभग ढाई सौ पृष्ठों की भूमिका में रस और नायिका-भेद संबंधी अनेक समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है और नायिकाभेद के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा धार्मिक पक्षों पर पूर्ण रूप से विचार किया है। उन्होंने विभिन्न भाषाओं के उदाहरण से यह दिखलाया है कि विश्व की विभिन्न भाषाओं तथा देशों में नायिकाओं का वर्णन किस प्रकार से होता रहा है।

रीतिकालीन कवियों ने नायिका-भेद का चित्रण वासनाजन्य रूप में तथा वासना की संतुष्टि की दृष्टि से ही किया है। निश्चय ही इस दृष्टि से नायिका भेद का वर्णन निन्दनीय है। परन्तु सौंदर्य और कला की अभिव्यक्ति की दृष्टि से तथा मानव प्रकृति के अध्ययन की दृष्टि से इनका वर्णन प्रशंसनीय ही कहा जायेगा। 'हरिऔध' के नायिका भेद चित्रण में यह मौलिकता है। उन्होंने श्रृंगार के अन्तर्गत नायिकाओं का वर्णन किया परन्तु उनमें कहीं अश्लीलत्व दोष नहीं आने दिया है। इसलिए उनका **'रस कलस'** काव्य रीति परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

'हरिऔध' ने विभिन्न रसों के जो अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, उनके द्वारा पाठक को यथार्थ में उन रसों के आस्वादन का आनन्द प्राप्त हो जाता है।

'हरिऔध' ने अद्भुत रस के अन्तर्गत रहस्यवादी कविता का भी समावेश किया है। इस दृष्टि से भी ग्रंथकार ने एक नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। इस प्रकार आजकल के आधुनिकतम शैली के काव्यों को भी इस काव्य रीति ग्रंथ में समाविष्ट कर लिया गया है। इन नवीन विचारों के समावेश से आधुनिक युग के लिए '**रसकलस**' की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। हरिऔध ने अपने रस-विवेचन में तथा उदाहरण प्रस्तुत करने में प्राचीनता और नवीनता का बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण रूप से समन्वय किया है, अतः उनका इस दृष्टि से भी आचार्यत्व सिद्ध होता है।

रस तथा नायिका-भेद के नाम को ही सुनकर नाक-भौं सिकोड़ने वालों के सम्मुख आज रीतिकालीन परम्परा की समस्याएँ और अधिक विकृत रूप में आ रही हैं। आज के उपन्यासों, काव्यों और नाटकों में यथार्थवादी तथा प्रगतिशील चित्रण के नाम पर नायिका भेद के जो अश्लील चित्र देखने को मिल रहे हैं, वे रीतिकाल की परम्परा के कान काट रहे हैं। वास्तव में इस दिशा में स्वस्थ परम्परा स्थापना का संकेत 'हरिऔध' ने ही किया। यदि रीतिकाल तथा उसके पश्चात् कवियों ने नायिका भेद तथा श्रृंगार रस वर्णन की शुद्ध और स्वस्थ परम्परा रखी होती तो साहित्य का यह अंश इतना निन्दनीय और गर्हित न समझा जाता।

'हरिऔध' ने हिन्दी-साहित्य को अनेक प्रकार के नये छन्दों का भी उपहार प्रदान किया। इस क्षेत्र में भी उनके प्रयोग प्रशंसनीय हैं। उर्दू के छन्दों को उनके प्रवाह की रक्षा करते हुए उन्होंने हिन्दी मात्रिक छन्दों के वस्त्र पहना दिये हैं, यह कम महत्त्व की बात नहीं है।

खड़ी बोली हिन्दी-साहित्य का कोई भी इतिहासकार जब साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन करने के लिए अपनी लेखनी उठाता है,तब उसे साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों की नींव डालने वालों में 'हरिऔध' का नाम लेना पड़ता है। कविता, गद्य, निबंध, नाटक, उपन्यास आदि जो भी क्षेत्र हैं, उन समस्त क्षेत्रों में इस महान शिल्पी नेतृत्व किया है। उस युग में जबकि इस महान रचनाकार की सृजनात्मकता का प्रचार चाहे संभव न हो पाया हो, परन्तु यह ध्रुव है कि खड़ी बोली युग के इस प्रकार की रचनाएँ साहित्य के अस्तित्व काल तक प्रकाश स्तंभ के समान अपनी ज्योति से ही प्रकाशित होती रहेंगी। इस साहित्यकार में सर्वपक्षीय सम्पूर्णता प्राप्त होती है।

परिशिष्ट I

हरिऔध की प्रमुख कृतियाँ

1. रुक्मिणी परिणय
2. प्रद्युम्न विजय व्यायोग
3. प्रद्युम्न पराक्रम
4. कृष्णकान्त का दानपत्र
5. प्रेमाम्बु वारिधि
6. प्रेमाम्बु प्रस्रवण
7. प्रेमाम्बु प्रवाह
8. प्रेम प्रपंच
9. अधखिला फूल
10. ठेठ हिन्दी का ठाठ
11. उद्बोधन
12. ऋतु दर्पण
13. पद्य प्रसून
14. पद्य प्रमोद
15. प्रिय प्रवास
16. वैदेही वनवास
17. पारिजात
18. बोलचाल
19. चोखे चौपदे
20. चुभते चौपदे
21. रस कलस
22. कल्प लता
23. फूल पत्ते
24. मर्म स्पर्श
25. इतिवृत्त

परिशिष्ट-II

अन्य सन्दर्भ-ग्रन्थ

1.	श्रीमद्भागवत	महर्षि व्यास
2.	उत्तररामचरित	भवभूति
3.	मेघदूत	कालिदास
4.	श्रद्धांजलि	गया नागरी प्रचारिणी सभा
5.	'हरिऔध' और उनका साहित्य	मुकुंद देव शर्मा
6.	'हरिऔध' के संस्मरण	मुकुंद देव शर्मा
7.	हरिऔध : जीवन और कृतित्व (शोध ग्रंथ)	मुकुंद देव शर्मा
8.	महाकवि 'हरिऔध' और उनका प्रिय-प्रवास	धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री
9.	डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का भाषण	राजेन्द्र प्रसाद
10.	गद्य शैली का विकास	जगन्नाथ शर्मा
11.	महाकवि 'हरिऔध'	गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'
12.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
13.	हरिऔध अभिनन्दन ग्रंथ	आरा नागरी प्रचारिणी सभा
14.	प्राचीन साहित्य	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
15.	दैनिक 'आज' की फाइलें	दैनिक 'आज' वाराणसी
16.	राधा का क्रमिक विकास	शशिभूषण दासगुप्त

भारतीय साहित्य के निर्माता

भारतीय साहित्य के इतिहास निर्माण की दीर्घ यात्रा में जिन महान् प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिभाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उनका परिचय सामान्य पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस पुस्तकमाला का प्रकाशन आरम्भ किया गया है। अब तक हिन्दी में निम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है :

लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ	हेम बरुआ
बंकिमचन्द्र चटर्जी	सुबोधचन्द्र सेनगुप्त
बुद्धदेव बसु	अलोकरंजन दासगुप्त
चण्डीदास	सुकुमार सेन
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	हिरण्मय बनर्जी
जीवनानन्द दास	चिदानन्द दासगुप्त
काज़ी नजरुल इस्लाम	गोपाल हाल्दार
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर	नारायण चौधुरी
माणिक बन्द्योपाध्याय	सरोजमोहन मित्र
माईकेल मधुसूदन दत्त	अमलेन्दु बोस
प्रमथ चौधुरी	अरुणकुमार मुखोपाध्याय
राजा राममोहन राय	सौम्येन्द्रनाथ टैगोर
ताराशकर बन्द्योपाध्याय	महाश्वेता देवी
श्रीअरविन्द	मनोज दास
सरोजिनी नायडू	पद्मिनी सेनगुप्त
तरुदत्त	पद्मिनी सेनगुप्त
गोवर्धनराम	रमणलाल जोशी
मेघाणी	बसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी
नानालाल	उमेदभाई मणियार
नर्मदाशंकर	गुलाबदास ब्रोकर
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	मदन गोपाल
बिहारी	बच्चन सिंह
देवकीनन्दन खत्री	मधुरेश
घनानन्द	लल्लन राय
हरिऔध	मुकुन्ददेव शर्मा
जयशंकर प्रसाद	रमेशचन्द्र शाह
जायसी	परमानन्द श्रीवास्तव
कबीर	प्रभाकर माचवे
केशवदास	जगदीश गुप्त
महावीर प्रसाद द्विवेदी	नन्दकिशोर नवल
नन्ददुलारे वाजपेयी	प्रेमशंकर
प्रेमचन्द्र	प्रकाशचन्द्र गुप्त
राहुल सांकृत्यायन	प्रभाकर माचवे
रैदास	धर्मपाल मैनी
श्यामसुन्दरदास	सुधाकर पाण्डेय
सुभद्रा कुमारी चौहान	सुधा चौहान

बी० एम० श्रीकंठय्य	ए० एन० मूर्तिराव
बसवेश्वर	एच० थिप्पेरुद्रस्वामी
विद्यापति	रमानाथ झा
ए० आर० राजराज वर्मा	के० एम० जॉर्ज
चन्दु मेनन	टी० सी० शंकर मेनन
कुमारन् आशान	के० एम० जॉर्ज
महाकवि उल्लूर	सुकुमार अपिकोड
वल्लत्तोल	बी० हृदयकुमारी
दत्तकवि	अनुराधा पोतदार
ज्ञानदेव	पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे
हरिनारायण आपटे	रामचन्द्र भिकाजी जोशी
केशवसुत	प्रभाकर माचवे
नामदेव	माधव गोपाल देशमुख
नरसिंह चिंतामण केलकर	रामचन्द्र माधव गोले
श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे
तुकाराम	भालचन्द्र नेमाड़े
फ़कीरमोहन सेनापति	मायाधर मानसिंह
राधानाथ राय	गोपीनाथ महन्ती
सरलादास	कृष्णचन्द्र पाणिग्राही
भाई वीर सिंह	हरवंस सिंह
दुरसा आढ़ा	रावत सारस्वत
जाम्भोजी	हीरालाल माहेश्वरी
मुँहता नैणसी	बृजमोहन जावलिया
प्रिथीराज राठौड़	रावत सारस्वत
सूर्यमल्ल मिश्रण	विष्णुदत्त शर्मा
बाणभट्ट	के० कृष्णमूर्ति
भवभूति	गो० के० भट
जयदेव	सुनीति कुमार चटर्जी
कल्हण	सोमनाथ धर
क्षेमेन्द्र	ब्रजमोहन चतुर्वेदी
माघ कवि	चण्डिकाप्रसाद शुक्ल
सचल सरमस्त	कल्याण बू० आडवाणी
शाह लतीफ़	कल्याण बू० आडवाणी
भारती	प्रेमा नन्दकुमार
इलंगो अडिगल	मु० वरदराजन
कम्बन	एस० महाराजन
माणिक्कवाचकर	जी० वंमीकनाथन
पोतन्ना	दिवाकर्ल वेंकटावधानी
वेदम वेंकटराय शास्त्री	वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ)
गुरजाड	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वीरेशलिंगम्	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वेमना	नार्ल वेंकटेश्वर राव
ग़ालिब	मुहम्मद मुजीब